

मंगलाचरण-घट्कर्म कलश पूजन आदि कृत्य सम्पन्न करके संकल्प करें। देवशक्तियों और सत्पुरुषों की साक्षी में संकल्प बोला जाए-

..... नामाऽहं दाम्पत्यजीवनस्य पवित्रता-मर्यादयोः
रक्षणाय त्रुटीनाञ्च प्रायश्चित्तकरणाय उज्ज्वलभविष्यद्भूतवे
स्वोत्तरदायित्वपालनाय संकल्पमहं करिष्ये।

संकल्प के बाद समय की सीमा का ध्यान रखते हुए देवपूजन, स्वस्ति वाचन आदि क्रम विस्तृत या संक्षिप्त रूप में कराया जाना चाहिए। सामान्य क्रम पूरा हो जाने पर विवाह पद्धति के मन्त्रों का प्रयोग करते हुए नीचे लिखे क्रम से निर्धारित विशेष उपचार कराये जाएँ-

- (१) ग्रन्थि बन्धन (२) पाणिग्रहण (३) वर-वधू की प्रतिज्ञाएँ
(४) सप्तपदी (५) आश्वास्तना।

(६) आहुति- यज्ञ करें तो अग्निस्थापन, गायत्री मन्त्राहुति, प्रायश्चित्ताहुति करके पूर्णाहुति करें। यदि यज्ञ करने की स्थिति न हो, तो दीपयज्ञ करें। पाँच दीप सजाकर रखें, गायत्री मन्त्र बोलते हुए उन्हें प्रकाशित करें। प्रायश्चित्त आहुति के प्रथम मन्त्र के साथ पति-पत्नी दीपों की ओर अपनी हथेलियाँ करें, जैसे घृत अवघ्राण के समय करते हैं।

(७) एकीकरण- पति-पत्नी एक-एक दीपक उठाएँ। नीचे लिखे मन्त्र पाठ के साथ ज्योतियों को मिलाकर एक ज्योति करें। भावना करें कि हम अपने व्यक्तित्वों को एक दूसरे के साथ इसी प्रकार एकाकार करने का प्रयास करेंगे। दैवी अनुग्रह और स्वजनों के सद्भाव उसमें सहायक होंगे।

ॐ समानी वऽआकृतिः समाना हृदयानि वः।

समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ - अथर्व० ६.६४.३

(८) अन्त में दम्पति पुष्पोहार मन्त्र (पृ० २१९) से एक दूसरे को माल्यार्पण करें। फिर सभी लोग मंगल मन्त्र बोलते हुए पुष्पवृष्टि करें, शुभकामना-आशीर्वाद दें।

(९) विसर्जन, जयघोष एवं प्रसाद वितरण के साथ कार्यक्रम का समापन किया जाए।

॥ पर्व प्रकरण ॥

पर्व आयोजन क्यों ? कैसे ?

भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति भी कहा जाता है, इसमें मनुष्य को, मनुष्यता को, आदर्शनिष्ठ बनाये रखने के लिए हर स्तर पर प्रखर दर्शन और विवेक संगत परम्पराओं का ऐसा क्रम बनाया गया है कि मनुष्य सहज रूप में ही प्रगति तथा सद्गति का अधिकारी बन सके।

मनुष्य का हित मात्र जानकारियों से नहीं होता, वह बार-बार भूलता है और याद रहते हुए भी अनेक बातें चरितार्थ नहीं कर पाता। इसके लिए सतत याद रखने या नियमित रूप से अभ्यास करने के लिए व्यवस्था बनाई गयी है। व्यक्तिगत स्तर पर उपासना, साधना, स्वाध्याय, मनन, चिंतन के क्रम बनाये गये। पारिवारिक स्तर पर श्रेष्ठ गुणों के विकास तथा उत्तरदायित्वों के पालन का वातावरण बनाये रखने के लिए षोडश संस्कारों का ताना-बाना बुना गया। इनके प्रभाव से परिवार व्यक्तिगत स्वार्थ के साधन नहीं-श्रेय साधना के आश्रम-तपोवन बन गये। परिवार भाव भी रक्तसम्बन्धों की सीमा से आगे बढ़ते हुए "वसुधैव कुटुम्बकम्" तक विकसित होता चला गया।

व्यक्ति और परिवार के बाद विश्व की तीसरी इकाई है-समाज। व्यक्तिगत दृष्टिकोण परिष्कृत करने के लिए पूजा-उपासना, पारिवारिक रीति-नीति को उत्कृष्ट बनाये रखने के लिए संस्कार प्रक्रिया है। ठीक इसी प्रकार समाज को समुन्नत- सुविकसित बनाने के लिए सामूहिकता, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, नागरिकता, परमार्थ-परायणता, देशभक्ति, लोकमंगल जैसी सत्प्रवृत्तियाँ विकसित करनी पड़ती हैं। उन्हें सुस्थिर रखना होता है, यह भी बार-बार स्मरण दिलाते रहने वाला प्रसंग है-इस प्रयोजन के लिए पर्व-त्यौहार मनाये जाते हैं, इन्हें सामाजिक संस्कार प्रक्रिया ही समझना चाहिए। साधना से व्यक्तित्व, संस्कारों से परिवार और पर्वों से समाज का स्तर ऊँचा बनाने की पद्धति दूरदर्शिता पूर्ण है, इसे हजारों-लाखों वर्षों तक आजमाया जाता रहा है। प्राचीन भारत की महानता का श्रेय इन छोटी-छोटी सत्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने वाली धर्म के नाम पर प्रचलित विधि व्यवस्थाओं को ही है।

विश्व का आध्यात्मिक नेतृत्व भारत करेगा- यह एक सुनिश्चित तथ्य है। इस उत्तरदायित्व को वहन करने के लिए उसे अपनी आत्मा जगानी पड़ेगी, यह जागरण मात्र लेखनी-वाणी से ही सम्पन्न न हो सकेगा। वरन् इसमें धार्मिक, आध्यात्मिक उन क्रिया-कलापों को भी सम्मिलित करना पड़ेगा, जो परोक्ष रूप से व्यक्ति, परिवार और समाज को देव भूमिका में पहुँचाने और स्वर्गीय वातावरण का सृजन करने में सर्वथा समर्थ हैं। उपर्युक्त त्रिविध क्रिया-कलापों को, उपर्युक्त संस्कार प्रक्रिया को प्राचीन भारत की तरह अब पुनः प्रचलित किया जाना है; ताकि भूले हुए आदर्शों और कर्तव्यों को हर क्षेत्र में भली प्रकार स्वीकार-शिरोधार्य किया जा सके। नव निर्माण के लिए धर्मतन्त्र की यह क्रिया पद्धति कितनी महत्वपूर्ण सिद्ध होगी- इसे कल हर कोई प्रत्यक्ष देखेगा।

पर्वों की रचना इसी दृष्टि से हुई कि प्राचीनकाल की महान् घटनाओं एवं महान् प्रेरणाओं का प्रकाश जनमानस में भावनात्मक एवं सामूहिक वातावरण के साथ उत्पन्न किया जाए। इसके लिए कितने ही पर्व-त्योहार प्रचलित हैं। उनमें से देश-काल-पात्र के अनुसार जब, जहाँ, जिन पर्वों को उपयुक्त माना जाए, उन्हीं के माध्यम से सामाजिक चेतना को परिष्कृत करते रहने के लिए पर्वयोजनों की व्यवस्था बनायी जा सकती है।

आज की स्थिति में पर्व आयोजनों की संख्या सीमित ही रखी जानी चाहिए। बहुत जल्दी-जल्दी किये जाने वाले आयोजन भार लगते हैं, उनसे सामूहिकता के संस्कारों में शिथिलता आने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। इसलिए प्रयास यह करना चाहिए कि लगभग दो माह के अन्तर से कोई न कोई सामूहिक पर्वयोजन होते रहें। इसे सामाजिक चेतना की, सामूहिक उत्साह की तथा जीवन्तता की कसौटी मान कर चलना चाहिए। प्राणवान् व्यक्तियों को प्रयास करना चाहिए कि अपने क्षेत्र में इस प्रकार के पर्वयोजन होते रहें।

॥ उपयुक्त पर्वों का चुनाव ॥

हिन्दू धर्म में प्रचलित पर्वों की संख्या बहुत अधिक है। सामूहिक पर्वयोजन के लिए ऐसे ही पर्व चुने जाने चाहिए, जिनका महत्व भी बहुत माना जाता हो और उनमें प्रेरणाएँ भी सशक्त उभारी जा सकती हों, ऐसे पर्वों

को भी क्षेत्र-क्षेत्र के अन्तर से कहीं कम, कहीं अधिक माना जाता हो और उन्हें सामूहिक रूप से मनाया जाना सम्भव हो, उन्हें मनाने का क्रम बना लिया जाना चाहिए। वर्ष में ४-६ बार हर्षोल्लास के वातावरण में सामूहिक पर्व मनाने की व्यवस्था बनायी जा सके, तो क्षेत्र में सामाजिक चेतना की जीवन्त और प्रगतिशील बनाये रखने में बड़ी सुविधा मिल सकती है। इस प्रकरण में कुछ सर्वमान्य महत्वपूर्ण पर्व मनाने की पद्धतियाँ दी गयी हैं। अपनी परिस्थितियों और क्षमता को देखते हुए यह निर्णय विवेकपूर्वक किया जा सकता है कि कौन-कौन से कितने पर्व सामूहिक रूप से मनाये जाएँ ?

जहाँ गायत्री शक्तिपीठें-प्रज्ञापीठें अथवा गायत्री परिवार युग निर्माण अभियान की सक्रिय शाखाएँ हैं, वहाँ चैत्र और आश्विन नवरात्रियों में सामूहिक साधना क्रम चलाने का प्रयास तो अनिवार्य रूप से करना ही चाहिए। पूर्णाहुति के साथ रामनवमी पर्व को भी जोड़ा जा सकता है। आश्विन नवरात्रि के साथ दशहरा पर्व जुड़ा रहता है। उसमें साधना अनुष्ठान की व्यवस्था को एक दिन तक और बनाये रखकर, थोड़ा-सा हेर-फेर करके ही यह पर्व भी साधना शृंखला के अन्तर्गत ही मनाया जा सकता है। नवरात्रि साधनाओं के साथ पर्वों को जोड़ना आवश्यक नहीं है, किन्तु बगैर किसी अतिरिक्त दबाव के नाम मात्र का समय और श्रम जोड़कर ये पर्व उस शृंखला में जोड़े जा सकें, तो अच्छा ही है।

इस पुस्तक में जिन पर्वों के विधान दिये गये हैं, वे इस प्रकार हैं-(१) चैत्र नवरात्रि-चैत्र शुक्ल १ से चैत्र शुक्ल ९ तक (२) रामनवमी-चैत्र शुक्ल नवमी (३) गायत्री जयन्ती-गंगादशहरा-ज्येष्ठ शुक्ल दशमी (४) गुरुपूर्णिमा-आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा (५) श्रावणी-रक्षा बन्धन-श्रावण शुक्ल पूर्णिमा (६) कृष्ण जन्माष्टमी-भाद्रपद कृष्ण अष्टमी (७) सर्वपितृ पूर्णिमा (८) अमावस्या-आश्विन की अमावस्या (९) शारदीय नवरात्रि-आश्विन शुक्ल १ से नवमी तक (१०) विजयादशमी-दशहरा-आश्विन शुक्ल दशमी (११) दीपावली-कार्तिक कृष्ण अमावस्या (१२) गीता जयन्ती-मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी (१३) वसन्त पंचमी-माघ शुक्ल पंचमी (१४) शिवरात्रि-फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी (१५) होली-फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा।

इनमें दोनों नवरात्रियों के विधि-विधान एक जैसे ही हैं। कृष्ण जन्माष्टमी

तथा गीता जयन्ती दोनों के विधान एक जैसे हैं। प्रेरणा की दृष्टि से दोनों में से कोई एक पर्व मना लेना पर्याप्त मान लेना चाहिए। यह सभी पर्व मनाये जाएँ अथवा इनके अतिरिक्त कोई अन्य पर्व सामूहिक रूप से न मनाएँ, ऐसा कोई नियम-बन्धन नहीं है। अपने क्षेत्र में प्रचलित महत्ता तथा आयोजन की व्यावहारिक सुविधा, संभावना को लक्ष्य करके इनमें से उपयुक्त पर्वों को सामूहिक आयोजन का रूप देने के लिए चुना जा सकता है।

कुछ क्षेत्रों में इनके अतिरिक्त कई पर्वों को बहुत अधिक मान्यता प्राप्त है, उन्हें भी सामाजिक चेतना जागरण के लिए सामूहिक आयोजन का रूप दिया जा सकता है। उन सब के स्वतन्त्र विधान देने से तो पुस्तक का कलेवर बहुत बढ़ जाता, इसलिए संयम से ही काम लेना पड़ा है; परन्तु जिस प्रेरणाप्रद ढंग से इन पर्वों को मनाने का क्रम बनाया गया है, उसी ढंग से अन्य किसी पर्व को मनाने की विधि-व्यवस्था बनाई जा सकती है। पर्वायोजन का सर्वसुलभ प्रारूप नीचे दिया जा रहा है। इस पुस्तक में जिन पर्वों के विधि-विधान दिये गये हैं, वे भी इसी अनुशासन के अन्तर्गत हैं।

॥ अनेक पर्वों का एक प्रारूप ॥

प्रारम्भ में ही उल्लेख किया जा चुका है कि पर्वों की परिपाटी समाज में प्रेरणा और उल्लास के जागरण की दृष्टि से आवश्यक है। उन्हें मनाने के विधान भी इसी ढंग से बनाये गये हैं, जिनसे अभीष्ट उद्देश्य पूरा हो सके। किसी पर्व के लिए विधि-विधान का क्रम इस प्रकार रहता है-

* पर्व के प्रमुख देवता के चित्र सहित पूजन मंच सजाया जाए। इसके दोनों ओर कलश एवं दीपक स्थापित किये जाएँ।

* पर्वायोजन के साथ गायत्री यज्ञ अवश्य जोड़कर रखना चाहिए। उससे स्थूल तथा सूक्ष्म वातावरण में जो प्रभाव पैदा होता है, वह अन्य प्रकार सम्भव नहीं होता। यदि किसी कारण यज्ञ असम्भव सा लगे, तो दीपयज्ञ करके काम चला लेना चाहिए।

* यज्ञ करना हो, तो देवमंच के सामने यज्ञ वेदी बनाई जाए। यदि उठाने रखने योग्य (पोर्टेबिल) यज्ञकुण्ड हैं, तो वह भी रखा जा सकता है। वेदी का धरातल देवमंच से तो नीचा हो; किन्तु अन्य लोगों के बैठने के धरातल से ऊँचा होना चाहिए।

* यदि यज्ञ करने की स्थिति नहीं है, तो वेदी के स्थान पर सजाई हुई चौकियों पर थालियों में दीपयज्ञ के लिए २४ दीपक रखे जाने चाहिए।

* श्रद्धालु आगन्तुकों को हाथ-पैर धुलाकर पंक्तिबद्ध बिठाया जाए।

* निर्धारित समय पर पहले युग संगीत, भजन, कीर्तन का क्रम प्रारम्भ कर दिया जाए। इससे वातावरण में सरसता और गंभीरता आती है।

* मंच पर पूजन तथा यज्ञ के लिए प्रतिनिधि रूप में जहाँ तक हो सके, कुमारी कन्याओं को बिठाया जाए। वे कन्याएँ पीले वस्त्र पहने हों तथा पूजन-यज्ञ आदि के क्रम अनुशासन से भली प्रकार परिचित, अभ्यस्त हों, उनकी संख्या दो से पाँच तक हो सकती है।

* संगीत के बाद संक्षेप में पर्व के उद्देश्य और अनुशासन पर सबका ध्यान आकर्षित किया जाए। यह गिने-चुने शब्दों में हो। कहीं भी भाषण जैसा लम्बा क्रम न चले। विभिन्न कर्मकाण्डों के साथ खण्ड-खण्ड में संक्षिप्त एवं सारगर्भित प्रेरणाएँ उभारने का क्रम चलाया जाना चाहिए।

* कर्मकाण्ड प्रारम्भ करने से पूर्व सबसे सामूहिक सस्वर गायत्री मंत्र का उच्चारण एक बार कराया जाए।

* पवित्रीकरण मन्त्र के साथ स्वयंसेवक कलश हाथ में लेकर पुष्प या पल्लवों से सबके ऊपर जल का सिंचन करें। कलशों की संख्या उपस्थिति के अनुरूप कम या अधिक निर्धारित कर लेनी चाहिए।

* प्रतिनिधियों-कन्याओं से पूरे षट्कर्म कराये जाएँ।

* सभी उपस्थित जनों के हाथ में अक्षत पुष्प पहुँचा दिये जाएँ। इन्हें वे श्रद्धापूर्वक हाथ में लिए रहें, पूजन का भाव बनाये रहें।

* चन्दन धारण के क्रम में सभी के मस्तक पर चन्दन लगाया जाए। घिसा हुआ चन्दन अथवा गोपी चन्दन (पीला रंग मिला खड़िया मिट्टी का गाढ़ा घोल) प्रयुक्त किया जा सकता है। रोली का भी प्रयोग हो सकता है। इनके साथ थोड़ा कपूर मिलाकर रखा जाए, तो इसकी सुगन्धि और ठण्डक श्रद्धा संचार में सहायक सिद्ध होती है।

* कलश पूजन से रक्षाविधान तक का क्रम पूरा किया जाए, समय कम हो, तो विवेकपूर्वक कुछ अंश घटाये जा सकते हैं।

* पर्व देवता के विशेष पूजन के लिए भावनाएँ उभारी जाएँ। उनकी

विशेषताओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जाए। प्रेरणा उभारने के लिए देवता-उनके अंग वाहन, आयुध, आभूषण सहयोगी आदि का भी उल्लेख किया जा सकता है। एक-एक का उल्लेख करें और उनका आवाहन किया जाए। इससे प्रेरणा और श्रद्धा का मिला-जुला वातावरण बन जाता है।

* आवाहन, नमन के बाद उन सबका संयुक्त षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से किया जाए।

* पूजन पूरा होने पर उनके आदर्शों के अनुरूप कोई छोटा-सा ही सही, किन्तु सुनिश्चित नियम धारण करने की प्रेरणा देते हुए संकल्प बोला जाए।

* संकल्प के बाद प्रारम्भ में दिए गये पुष्प-अक्षत आदि एकत्र करके देवमंच पर अर्पित कर दिये जाएँ।

* संकल्प को धारण किये रह सकने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए यजन (यज्ञ) करने की महत्ता बतलाते हुए यज्ञ या दीपयज्ञ सम्पन्न कराया जाए। यज्ञ किया जाए, तो यज्ञ आरती के साथ पर्वदेवता की आरती भी करें। दीपयज्ञ करें, तो उसी के बाद पर्वदेवता की आरती करें।

* अन्त में विसर्जन जयघोष आदि कराया जाए। युग निर्माण सत्संकल्प दुहराया जाए। प्रसाद वितरण के साथ क्रम समाप्त किया जाए।

यह क्रम प्रत्येक पर्व के लिए एक जैसा है। पर्वदेवता के अनुरूप उनके पूरक अंग, आयुध-आभूषण वाहन आदि का ही अन्तर पर्व-पर्व में पड़ता है। पर्व प्रसाद संकल्प में भी गुण विशेष धारण करने का क्रम बदलता है। जिन पर्वों के विधान दिये गये हैं, उनके तो हैं ही, जिनके नहीं हैं, उन्हें मनाना हो, तो विवेकपूर्वक उनके लिए सामान्य प्रकरण, मंगलाचरण आदि से मन्त्र चुनकर लिये जा सकते हैं, इस प्रकार एक ही अनुशासन में नवीनता, रोचकता, विविधता का समावेश किया जाना सम्भव है।

॥ पर्व व्यवस्था सूत्र - संकेत ॥

जो पर्व मनाया जाना है, उसके बारे में लगभग एक माह पूर्व निर्णय कर लेना चाहिए। परिजन जहाँ-तहाँ उसकी उत्साहवर्धक चर्चा करते रहें, अपने परिचितों से उसमें शामिल होने का आग्रह भी करते रहें। सप्ताह या ३-४ दिन पूर्व पुरुष एवं महिला टोलियाँ पीले चावल घर-घर देकर आमन्त्रण दें। आवश्यक समझा जाए, तो छोटे पर्व भी छपवाकर बाँटे जा सकते हैं।

पर्वयोजन का समय ऐसा रखा जाए, जब नर-नारियों को उसमें सम्मिलित होने में कठिनाई न हो। आयोजन स्थल पर सुन्दर मण्डप सजाकर पर्व देवता की झाँकी सजाई जाए, आमन्त्रित व्यक्तियों को क्रमबद्ध ढंग से बिठाया जाए।

पर्व पूजन के लिए जितने श्रद्धालु नर-नारियों के उपस्थित होने की सम्भावना हो, उनके लिए क्रमबद्ध ढंग से बैठने योग्य स्थान आयोजन स्थल पर होना चाहिए। स्थल का चयन अथवा व्यक्तियों का आमन्त्रण उसी हिसाब से किया जाना चाहिए। अभ्यागतों के जूते-चप्पल उतरवाने, उन्हें व्यवस्थित रखने तथा सुरक्षा के लिए स्वयंसेवक नियुक्त रखना चाहिए।

पुरुषों, महिलाओं को क्रमबद्ध ढंग से बिठाने के लिए अनुभवी और शालीन परिजन नियुक्त किये जाएँ। बच्चों की आदत आगे घुसने की होती है, उन्हें काबू में रखा जाए। छोटे बच्चों वाली महिलाएँ एक ओर बिठा ली जाएँ, ताकि बच्चे गड़बड़ करें, तो उन्हें उठकर-जाने में कठिनाई न हो। पर्व पूजन के समय सबके पास अक्षत-पुष्प पहुँचाने, तिलक लगाने, सिंचन करने आदि के लिए सधे हुए परिजनों को पहले से नियुक्त करके रखा जाए।

पर्वयोजन-पूजन से सम्बन्धित सभी वस्तुएँ समय से पूर्व एकत्र कर लेनी चाहिए तथा उन्हें एक बार जाँच करके यथास्थान रख देनी चाहिए; ताकि समय पर विसंगतियाँ न उठें। समय का ध्यान रखा जाए। पर्व पूजन का समय निर्धारित करते समय भली प्रकार सोच-समझ लें कि कौन-सा समय लोगों के लिए अनुकूल पड़ेगा। सुविधाजनक समय घोषित करने के बाद समय का अनुशासन पाला जाए। क्रम समय पर आरम्भ कर दिया जाए तथा समय पर समाप्त भी कर दिया जाए। इससे लोगों का समय नष्ट नहीं होगा और भावी आयोजनों के लिए जन उत्साह बढ़ेगा।

वातावरण को रमणीक, पवित्र बनाने का प्रयास करें। वन्दनवार सज्जा, झण्डियाँ, बैनर आदि लगाये जाएँ। शान्ति बनाये रखकर, अगरबत्तियाँ लगाकर वातावरण में श्रद्धा का संचार किया जाए। इस प्रकार के छोटे-छोटे उपचारों से वातावरण में भव्यता भर जाती है। आयोजन को खर्चीला न बनाने का ध्यान रखा जाए। प्रसाद में पंचामृत, चीनी की गोलियाँ (चिनौरी, चिरौजी दाना) पंजीरी जैसी कोई एक ही सस्ती वस्तु रखी जाए।

॥ नवरात्रि पर्व ॥

नवरात्रि पर्व वर्ष भर में दो बार आता है। (१) चैत्र शुक्ल १ से ९ तक। चैत्र नवरात्रि जिस दिन आरम्भ होती है, उसी दिन विक्रमी संवत् का नया वर्ष प्रारम्भ होता है। विक्रमादित्य राजा होने के साथ ही जनहित-लोकमंगल के लिए समर्पित साधक भी थे। उनकी आदर्शनिष्ठा की झलक सिंहासन बत्तीसी की पुस्तकों में मिलती हैं। लोकमानस और शासन तन्त्र के आदर्श समन्वय के प्रतीक के रूप में उन्हें मान्यता दी गई और उनके राज्याभिषेक को नवीन सम्वत्सर से जोड़कर उनकी कीर्ति को अमर बना दिया गया। इसी प्रकार चैत्र नवरात्रि का समापन दिवस भगवान् राम का जन्म दिन रामनवमी होता है। (२) दूसरी नवरात्रि आश्विन शुक्ल १ से ९ तक पड़ती है। इससे लगा हुआ विजयादशमी पर्व आता है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की गणना आश्विन नक्षत्र से प्रारम्भ होती है। इस आधार पर आश्विन मास ज्योतिष नक्षत्र वर्ष का प्रथम मास माना जाता है।

इस प्रकार दोनों नवरात्रि पर्वों के साथ नये शुभारम्भ की भावना, मान्यता जुड़ी हुई है। दोनों में छः मास का अन्तर है। यह साधना पर्व वर्ष को दो भागों में बाँटते हैं। ऋतुओं के सन्धिकाल इन्हीं पर्वों पर पड़ते हैं। सन्धिकाल को उपासना की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। प्रातः और सायं, ब्राह्ममुहूर्त एवं गोधूलि वेला दिन और रात्रि के सन्धिकाल हैं। इन्हें उपासना के लिए उपयुक्त माना गया है। इसी प्रकार ऋतु सन्धिकाल के नौ-नौ दिन दोनों नवरात्रियों में विशिष्ट रूप से साधना-अनुष्ठानों के लिए महत्त्वपूर्ण माने गये हैं। नवरात्रि पर्व के साथ दुर्गावतरण की कथा भी जुड़ी है। वर्तमान समय, युग सन्धि काल के रूप में तत्त्वदर्शियों ने स्वीकारा है। युग की भयावह समस्याओं से मुक्ति के लिए युगशक्ति के उद्भव की कामना सभी के मनों में उठती है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत साधना की अपेक्षा सामूहिक साधना अनुष्ठानों का महत्त्व अत्यधिक बढ़ जाता है। इसीलिए युग निर्माण अभियान के सूत्र संचालकों ने हर भावनाशील से अपेक्षा की है कि नवरात्रि पर्व पर सामूहिक साधना अनुष्ठानों के लिए विशेष रूप से प्रयास करें। शक्तिपीठ, प्रज्ञा संस्थान एवं शाखा संगठनों को तो ये उत्तरदायित्व विशेष रूप से सौंपे

गये हैं। जहाँ दो चार-परिजन भी होते हैं, वहाँ भी नवरात्रियों पर सामूहिक साधना-अनुष्ठान की व्यवस्था बना लेते हैं। जो किसी मजबूरी में अपना अनुष्ठान घर पर करते हों, वे भी सायंकाल सत्संग-आरती में तथा पूर्णाहुति के दिन सामूहिक क्रम में ही शामिल होते हैं। ऐसे प्रयास सभी साधक करें।

॥ व्यवस्था-क्रम ॥

* सामूहिक साधना के लिए कोई सार्वजनिक स्थल चुना जा सकता है, किसी के व्यक्तिगत स्थान का भी उपयोग किया जा सकता है। स्थान ऐसा हो, जहाँ अपनी सहज गतिविधियों से दूसरों को तथा उनकी गतिविधियों से अपने साधना क्रम में अड़चन पैदा न हो।

* स्थान इतना होना चाहिए कि देव स्थापना और सामूहिक उपासना के लिए जगह की तंगी न पड़े।

* साधना स्थल पर गायत्री माता का चित्र, कलश, दीपक आदि सजाये जाएँ। सामूहिक साधना स्थल पर जौ बोने से पवित्रता एवं सुन्दरता का संचार होता है। जौ एक-दो दिन पहले भी बोये जा सकते हैं। बोने से पूर्व उन्हें चौबीस घण्टे भिगो दिया जाए, तो अंकुर जल्दी निकल आते हैं।

* सामूहिक साधना के लिए कई दिन पहले से ही जन सम्पर्क द्वारा साधकों की संख्या बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

* प्रेरणा देने, प्रभाव बतलाने और स्नेह भरे आग्रह, प्रोत्साहन का क्रम अपनाने से कमजोर संकल्प वाले भी साधना का लाभ उठाने लगते हैं।

* ९ दिन में २७ माला नित्य करने से २४००० मन्त्र होते हैं। जिनसे न बन पड़े वे १२ माला नित्य करके १०८ माला का अनुष्ठान कर सकते हैं।

* साधना काल में अस्वाद व्रत, एक समय अन्नाहार, शाक, फल जैसे सुगम उपवास का क्रम अपनाने, ब्रह्मचर्य पालने, चमड़े के जूतों का उपयोग न करने, चारपाई पर न सोने, अपने कार्य स्वयं करने जैसी सर्वसुलभ तप-तितिक्षा अपनाने की बात सबको ध्यान में रखनी चाहिए। जिस दिन से नवरात्रि प्रारम्भ हो, उस दिन प्रातःकाल या उसके एक दिन पहले शाम को सामूहिक संकल्प की व्यवस्था बनानी चाहिए। संक्षेप में साधना का महत्त्व एवं नियम समझाते हुए नीचे लिखे क्रम से उपचार कराएँ-

(१) षट्कर्म (२) यज्ञोपवीत परिवर्तन, जो यज्ञोपवीत न पहने हों, उन्हें

नवरात्रि साधना के लिए अस्थाई यज्ञोपवीत दिया जा सकता है। (३) तिलक, कलावा, (४) कलश स्थापना-दीप प्रज्वलन, पूजन (५) सर्वदेव आवाहन, पूजन-नमस्कार। यदि समय की सुविधा हो, तो षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से भी कराया जा सकता है। (६) स्वस्तिवाचन (७) अनुष्ठान संकल्प (८) सिंचन-अभिषेक एवं (९) पुष्पाञ्जलि। (इनके मन्त्र सामान्य प्रकरण में दिये जा चुके हैं।)

जप के समय दीपक एवं अगरबत्ती आदि जलाये रखें। अखण्ड दीपक आवश्यक नहीं। अखण्ड जप या दीपक रखने की भावना और स्थिति हो, तो प्रातःकाल से लेकर सायंकाल आरती तक रखा जाना पर्याप्त है। शाम को सामूहिक गायत्री चालीसा गान, प्रेरक भजन, कीर्तन, प्रज्ञा पुराण वाचन, जैसे सत्संग क्रम चलाये जाएँ। अन्त में आरती करके समापन किया जाए।

नौवें दिन सामूहिक पूर्णाहुति की व्यवस्था की जाए। एक, पाँच, नौ जैसी भी स्थिति हो, तदनुरूप वेदियाँ बनाकर यज्ञ किया जाए। सामूहिक क्रम में आहुतियों की संख्या का बन्धन नहीं होता। पूर्णाहुति में सुपारी अथवा नारियल के गोले का उपयोग किया जाना चाहिए।

पूर्णाहुति के बाद सामान्य प्रसाद वितरण करके समापन किया जा सकता है। यदि व्यवस्था हो सके, तो सभी साधकों को अमृताशन (दलिया खिचड़ी जैसे भगौनी में पकाने योग्य पदार्थ) का भोजन कराकर, प्रसाद से उपवास की समाप्ति (पारण) की व्यवस्था बनाई जानी चाहिए।

अनुष्ठान के साथ दान की परम्परा जुड़ी हुई है। ज्ञान दान सर्वश्रेष्ठ है। इस दृष्टि से प्रत्येक साधक को चाहिए कि यथाशक्ति वितरण योग्य सस्ता युग साहित्य खरीदकर उन्हें उपयुक्त व्यक्तियों को साधना का प्रसाद कहकर दें। पढ़ने और सुरक्षित रखने का आग्रह करें। अनुष्ठान के बाद इस प्रक्रिया को श्रेष्ठदान एवं ब्रह्मभोज के समतुल्य माना जाता है। यज्ञ पूर्णाहुति के साथ ही इसे सुनिश्चित मात्रा में करने का संकल्प करना चाहिए। पूर्णाहुति के बाद विसर्जन करें। यदि रामनवमी अथवा दशहरा पर्व उसी स्थल पर मनाना है, तो विसर्जन पर्व पूजन के बाद करें। सामूहिक साधना के संरक्षण, दोष परिमार्जन के लिए शान्तिकुञ्ज हरिद्वार सूचना भेजी जा सकती है।

* * *

॥ रामनवमी ॥

माहात्म्य बोध- भगवान् के अवतार सदा अधर्म के विनाश और धर्म की स्थापना, साधुता का परित्राण और दुष्कृत्यों का विनाश, इन दो प्रयोजनों को लेकर होते हैं। जब भी-जो भी अवतारी देवदूत इस धरती पर आये हैं, तब उन्होंने बड़ी हुई असुरता को निरस्त किया और डगमगाते हुए देवत्व का सन्तुलन सँभाला है। जिनके भीतर इन दो प्रयासों के लिए तीव्र उत्कण्ठा जग रही हो, जिनका कर्तव्य इस दिशा में जितना प्रखर हो रहा हो, समझना चाहिए उनके अन्तःकरण में भगवान् की उतनी ही ज्योति जगमगा रही है। अवतारी देवदूतों का जन्म, जयन्ती मनाने का भी प्रधान उद्देश्य यही है कि उन्हें जो कार्य अत्यधिक प्रिय हैं, जिसके लिए वे देह धारण करते और कष्ट सहते हैं, उनका अनुकरण-अनुगमन हम भी करें।

यों तो अवतार चौबीस अथवा दस हुए हैं। पर उनमें प्रधानता भगवान् राम और कृष्ण को दी जाती है। इन्हीं की कथा-गाथाएँ प्रख्यात हैं। रामलीला, कृष्णलीला भी इन्हीं की होती है। देव मंदिरों में इन्हीं की प्रतिमाएँ हैं। अन्य अवतारों की भी चर्चा-प्रतिष्ठा है, पर इतनी नहीं, जितनी इन दो की। कारण कि इन दो का अवतरण, शिक्षण उन विशेषताओं से भरा पड़ा है, जिनकी मानव जीवन को समुन्नत, विकसित बनाने के लिए नितान्त आवश्यकता है। मार्यादाओं का पालन, कर्तव्य पर अविचल निष्ठा, व्यवहार में सौजन्य और अनीति के विरुद्ध प्रबल संघर्ष यह चारों ही लक्ष्य ऐसे हैं, जिन्हें रामचरित के कथा प्रसंगों में पग-पग पर पाया जा सकता है।

जन्म से लेकर लीला समापन तक के सभी प्रसंगों में उत्कृष्ट आदर्शवादिता ही भगवान् राम चरितार्थ करते रहे। चारों भाई गेंद खेलते हैं, छोटे भाई भरत को विजयी सिद्ध करने और प्रसन्न करने के लिए राम हारने का अभिनय करते हैं। अपनी हेटी भी होती हो, पर छोटों को श्रेय मिलता हो, तो अपनी बात को भुला ही दिया जाना चाहिए। बचपन में ही महर्षि विश्वामित्र यज्ञ की रक्षा के लिए उन्हें माँगने आये, तो प्राण हथेली पर रख खुशी-खुशी तपोवन में चले जाते हैं। लाभ तो विश्वामित्र का और यज्ञ की रक्षा में अपने प्राणों का संकट, वे इस तरह नहीं सोचते, वरन् शुभकार्य कहीं

भी किया जा रहा हो, कोई भी कर रहा हो, उसमें भरपूर सहयोग करना आवश्यक है। वे प्राणों तक का खतरा उठाकर ऋषि की पूरी सहायता करते हैं। किशोर होते हुए भी महाबलिष्ठ असुरों से जूझते हैं।

विमाता कैकेयी वनवास देना चाहती हैं। विमाता को माता से बढ़कर उन्होंने माना और माता की प्रसन्नता के लिए वनवास स्वीकार किया। अधिकार त्यागा और कर्तव्य निबाहा। पिता वचन तोड़ना चाहते हैं। कैकेयी को दिये वचन पूरा करने में आगा-पीछा सोचते हैं। राम उनकी गुत्थी सुलझाते हैं। स्वजन सम्बन्धियों का व्यक्तिगत मोह तुच्छ और सज्जनों के वचन रखना, उनकी प्रामाणिकता का बना रहना महान् बताते हैं। वनगमन स्वीकार करके उन्होंने पिता को अपनी प्रामाणिकता अक्षुण्ण बनाये रखने तथा वचन पालन का अवसर प्रदान किया।

चित्रकूट में भरत मिलते हैं। वे वापस चलने का अनुरोध करते हैं। राज्य सुख भोगने के लिए कहते हैं। राम अपने भाई को राजा और स्वयं तपस्वी बने रहने में अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हैं। सुविधाओं से भरे जीवन की अपेक्षा परमार्थ प्रयोजनों के लिए कष्ट-कठिनाई सहना श्रेयस्कर मानते हैं, वे सुविधाओं के लाभ को स्वीकार करने से इन्कार कर देते हैं। हारे हुए दुर्बल शरीर का न्यायानुमोदित समर्थन करते हुए प्रचण्ड बलशाली से जूझते हैं, स्वावलम्बन का जीवन जीकर निःस्वार्थ भाव से छात्र और ऋषियों का नित्य मार्ग साफ करने वाली शबरी की भक्ति को तथाकथित योगी-तपस्वियों से बढ़-चढ़कर ठहराते हैं और उसका अभिवादन करने उसके घर पहुँचते हैं। जन्म-जाति के आधार पर ऊँच-नीच की अवांछनीय मूढ़ता पर पाद प्रहार करते हैं और शबरी के जूठे बेर खाते हैं।

सूर्यणखा के रूप और वैभव भरे प्रस्ताव को अस्वीकार करके एक पत्नीव्रत की प्रबल निष्ठा का परिचय देते हैं। असुरता के आतंक से लड़ने में जब समझदार मनुष्य अपनी प्रत्यक्ष हानि देखते-साथ नहीं देते तो, नासमझ कहे जाने वाले पिछड़े वर्ग के वानरों की सेना गठित करते हैं और संसार को बताते हैं कि पाप बाहर से कितना ही बड़ा बलवान् क्यों न दीखता हो, भीतर से अत्यन्त दुर्बल होता है और यदि उसके विरुद्ध मनस्वी लोग उठ खड़े हों, तो असुरता की बालुका निर्मित दीवाल ढहने में देर नहीं लगती। अनेक

वरदानों से शक्ति-सम्पन्न रावण जब मारा गया और उसके शरीर में अनेक बाण-व्रण पाये गये, तो राम ने यही कहा-मेरा बाण तो एक ही लगा है, बाकी घाव तो उसके कुकर्मों के हैं, जो अपने आप ही फूटे हैं। अपनी विजय का रहस्य भी उन्होंने धर्म रथ पर आरूढ़ होना बताया है। न्याय, नीति और सत्य में हजार हाथी के बराबर बल होता है। वह साधनरहित होते हुए भी अन्ततः विजयी होकर ही रहता है। प्रजा की प्रसन्नता के लिए अपनी पत्नी को वनवास भेजना, यज्ञ के अवसर पर पत्नी की आवश्यकता बताये जाने पर भी एक पत्नी के होते दूसरे विवाह की बात अंगीकार न करना, वृद्धावस्था में तप-साधना करने के लिए वानप्रस्थ, संन्यास परम्पराओं को स्वीकार करना जैसे अनेकों प्रसंग ऐसे हैं, जिनका घटनात्मक वर्णन हजार प्रवचनों से बढ़कर हैं। भगवान् राम ने जीवन के आदर्शों को जीभ से नहीं कहा, वरन् अपने आचरण द्वारा लोगों के सामने रखा।

भगवान् राम के अन्य साथी-सहयोगी, मित्र, स्वजन भी ऐसे ही सच्चे चरित्र वाले हैं। उन्होंने सामयिक लाभ उठाने के लिए खोटे लोगों का न तो समर्थन किया और न उन्हें साथ लिया। लक्ष्मण ने अनन्य सेवक की तरह भाई का साथ दिया। वनवास उन्हें नहीं मिला, तो भी साथ रहे। उनकी पत्नी उर्मिला और माता सुमित्रा ने उन्हें उस आदर्श की स्थापना से रोका नहीं, वरन् अपने मोह पर नियन्त्रण करके उन्हें और उल्टा प्रोत्साहित किया। भरत ने भाई के राजगद्दी न लेने पर उनकी पादुकाओं को सिंहासन पर रखा और स्वयं भाई जैसा तपस्वी जीवन बिताते हुए राजकाज चलाते रहे। केवट ने उन्हें गंगा पार उतारा। निषादराज को जब यह आशंका हुई कि भरत सेना लेकर राम को मारने जा रहे हैं, तब उसने निश्चय किया कि सारी नावें डुबो दी जाएँ और जीवित रहते भरत के आक्रमण को सफल न होने दिया जाए। पीछे आशंका निर्मूल सिद्ध हुई और खुशी-खुशी राम-भरत की भेंट में उसने सहायता दी, यह दूसरी बात थी। अपने प्राण देकर भी अन्याय से लड़ने का निश्चय करना निषादराज की महानता का परिचायक है। राम के ऐसे ही मित्र सहयोगी थे।

बूढ़ा जटायु रावण से जूझ पड़ा-जीवित रहते किसी की बहू-बेटी का अपमान न होने दूँगा। उसने प्राण गँवा दिए पर बलवान् आततायी से पराभूत

नहीं हुआ। रीछ-वानरों का त्याग बलिदान देखते ही बनता है। यहाँ तक कि एक गिलहरी बालों में धूल भरकर समुद्र पर बिखेरने लगी, ताकि समुद्र उथला हो जाए और अनीति से जूझने वाले वानरों को सफलता मिले। विभीषण ने सुविधाएँ छोड़ीं, कुटुम्ब रिश्ते का पक्षपात छोड़, त्रास सहा; किन्तु न्याय का समर्थन करने के लिए राम के साथ रहा। जो स्वयं श्रेष्ठ होता है, उसे श्रेष्ठ ही मानते हैं और वे ही उनके सहयोगी बनते हैं। इस प्रकार के घटनाक्रम और उनके प्रसंगों पर कहे हुए उनके वचन ऐसे हैं, जिनमें नीति, धर्म, सदाचार, संयम, परमार्थ, उदारता, अध्यात्म, कूट-कूट कर भरा है। रामनवमी के अवसर पर भगवान् राम का जन्म दिन मनाते हुए ऐसे ही घटनाक्रम और प्रसंग सुनाए जाएँ, ताकि जन साधारण को राम-भक्ति के रूप में उनके अनुगमन की प्रेरणा मिले।

रामनवमी के छः दिन बाद चैत्र सुदी पूर्णिमा को हनुमान् जयन्ती होती है। उनकी चर्चा भी राम के अनन्य सेवकों के रूप में की जा सकती है। भजन-पूजन भले ही हनुमान् जी न करते हों, पर उनसे अपना शरीर और मन सर्वतोभावेन “रामकाज” के लिए समर्पित किया और समुद्र लाँघना, लंकादहन, पर्वत उठा लेने जैसे कठिन से कठिन कार्य करने को तत्पर रहे। अपनी सुविधा को भूल गये। न विवाह, न बच्चे, न नौकरी, न कोठी, न बाँगला। अपने आपको विस्मरण करके ही कोई व्यक्ति भगवान् का कार्य कर सकता है और भक्त की कसौटी पर खरा सिद्ध हो सकता है। इसकी जीवन्त शिक्षा हनुमान् के चरित्र से मिलती है। रामनवमी ऐसे ही सन्देशों और प्रेरणाओं से भरी हुई है। लोगों को यही समझाया जाना चाहिए कि भगवान् राम के प्रति सच्ची श्रद्धा रखने के लिए उन्हें उनके सन्देश हृदयंगम करने पड़ेंगे और अपने क्रिया-कलाप बदलने पड़ेंगे। मात्र तिलक लगाने, आरती उतारने और नाम रटने से ही भक्ति का प्रयोजन पूरा न हो सकेगा।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

*रामनवमी पर भगवान् राम का चित्र देवमंच पर सजाया जाए। उनके साथ देवी माता सीता, बन्धुगण एवं आदर्श सेवक हनुमान् भी हों।

*पर्व व्यवस्था क्रम के अनुसार सारी व्यवस्था बनाकर, प्रारम्भ में सामान्य पूजन कराते हुए रक्षाविधान तक का क्रम सम्पन्न किया जाए।

तत्पश्चात् क्रमशः भगवान् राम, माता सीता, बन्धु एवं भक्त हनुमान् का आवाहन दिए हुए मन्त्रों के साथ किया जाए। भगवान् श्रीराम का व्यक्तित्व इन सभी के संयोग से पूर्ण बनता है। प्रत्येक आवाहन के पूर्व उनकी महानता पर संक्षिप्त सारगर्भित टिप्पणी की जाए। माहात्म्य बोध प्रकरण अथवा सामान्य ज्ञान के आधार पर यह क्रम चलाया जाए। मन्त्रोच्चार के साथ निर्दिष्ट भावना उभारते हुए आवाहन करें।

॥ श्रीराम आवाहन ॥

भगवान् श्रीराम के जन्म दिवस के पावन पर्व पर उनका प्रकाश हम सबके अन्तःकरण में और वातावरण में अवतरित हो, ताकि उनके अनुरूप क्रम अपनाने और जीवन में श्री-समृद्धि और सन्तोष का संचार करने में हम समर्थ हों।

ॐ दाशरथ्ये विद्महे, सीतावल्लभाय धीमहि।

तन्नो रामः प्रचोदयात्। - रा० गा०

ॐ राम एव परं ब्रह्म, राम एव परन्तपः।

राम एव परं तत्त्वं, श्रीरामो ब्रह्मतारकम् ॥ - रा० रह० १६

ॐ श्रीरामाय नमः।

॥ सीता आवाहन ॥

पवित्रता और निष्ठा की मूर्ति माँ सीता पवित्र प्रवाह बनकर हम सब में संचरित हों, ताकि हम अपूर्णता को पूर्णता में बदल सकें।

ॐ जनकजायै विद्महे, रामप्रियायै धीमहि।

तन्नः सीता प्रचोदयात् ॥ - सी० गा०

ॐ उद्भवस्थिति संहारकारिणीं क्लेश हरिणीम्।

सर्वश्रेयस्करिणीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम् ॥ - रा० च० मा०

ॐ श्री सीतायै नमः।

॥ बन्धु आवाहन ॥

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदर्श बन्धु भाव के रूप में प्रकट हों, सक्रिय हों, ताकि द्वेष और विग्रह का समापन होकर आदर्श सहकार का लाभ हम सब उठा सकें-

ॐ बाहू मे बलमिन्द्रियं, हस्तौ मे कर्म वीर्यम् ।

आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ॐ श्रीरामानुजेभ्यो नमः । - २०७

॥ हनुमान् आवाहन ॥

भक्तराज हनुमान् प्रभु समर्पित पुरुषार्थ की प्रचण्डधारा के रूप में अवतरित-संचरित हों, जिससे स्वार्थ और निष्क्रियता के फन्दे कटें, असुरता क्षीण हो और जीवन धन्य बने ।

ॐ अञ्जनीसुताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि ।

तन्नो मारुतिः प्रचोदयात् ॥

- ह० गा०

ॐ श्री हनुमते नमः ।

आवाहन के बाद श्रीरामपंचायतन का षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से करें । पूजन के बाद पर्व प्रसाद रूप में मर्यादा धारण संकल्प कराए जाएं ।
.....नामाहं मर्यादापुरुषोत्तम-भगवतो रामचन्द्रस्य जन्मपर्वणि देवसंस्कृतिमर्यादानुरूपेण स्वकीय चिन्तन-चरित्र- आकांक्षा- निर्माणार्थं अद्यप्रभृति..... पर्यन्तं परिपूर्णनिष्ठापूर्वकं संकल्प्य अहं करिष्ये ।

संकल्प के बाद यज्ञ, दीपयज्ञ, आरती आदि समापन के उपचार किये जाएं । जयघोष एवं प्रसाद वितरण के साथ आयोजन समाप्त किया जाए ।

* * *

॥ गायत्री जयन्ती-गंगा दशहरा ॥

माहात्म्य बोध- सृष्टि के आदि में ब्रह्मा जी जिस शक्ति की साधना करके विश्व संचालन के उपयुक्त ज्ञान एवं विज्ञान, अनुभव एवं पदार्थ प्राप्त कर सकने में समर्थ हुए, पौराणिक प्रतिपादन के अनुसार उसका नाम गायत्री है । सृजन और अभिवर्धन का उद्देश्य लेकर चल रही जीवन प्रक्रिया को भी इसी सम्बल की आवश्यकता है, जो ब्रह्मा जी की तरह उसे मानसिक क्षमता एवं भौतिक सम्पन्नता युक्त कर सके । गायत्री मन्त्र में वे तत्त्व बीज मौजूद हैं । उपासना और तपश्चर्या के विधान को अपनाकर इन तत्त्वों को वैज्ञानिक रूप से अपने भीतर-बाहर बढ़ाया भी जा सकता है । गायत्री को वेदमाता, ज्ञान गंगोत्री, संस्कृति की जननी एवं आत्मबल की अधिष्ठात्री कहा जाता है । इसे गुरुमन्त्र कहते हैं । यह समस्त भारतीय धर्मानुयायियों की उपास्य है । इसमें वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं, जिनके आधार पर वह सार्वभौम, सार्वजनीन उपासना का पद पुनः ग्रहण कर सके । इसी ज्ञान-विज्ञान की देवी गायत्री का जन्मदिन है-गायत्री जयन्ती ।

इसी दिन भगवती गंगा स्वर्ग से धरती पर अवतरित हुई । जिस प्रकार स्थूल गंगा भूमि को सींचती, प्राणियों की तृषा मिटाती, मलिनता हरती और शान्ति देती है, वही सब विशेषताएँ अध्यात्म क्षेत्र में गायत्री रूपी ज्ञान गंगा की हैं । गायत्री महाशक्ति के अवतरण की गंगा अवतरण से संगति भली प्रकार मिल जाती है । एक को सूक्ष्म दूसरे को स्थूल- एक ही तत्त्व की व्याख्या कहा जाए, तो कुछ अत्युक्ति न होगी ।

सगर राजा के साठ हजार पुत्र अपने कुकर्मा के फलस्वरूप अग्नि में जल रहे थे । उनकी कष्ट निवृत्ति गंगा जल से ही हो सकती थी । सगर के एक वंशज भगीरथ ने निश्चय किया कि वे स्वर्ग से गंगा को धरती पर लायेंगे । इसके लिए कठोर तप साधना में लग गये । इस निःस्वार्थी, परमार्थी का प्रबल पुरुषार्थ देखकर गंगा धरती पर आयी; पर उन्हें धारण कौन करे, इसके लिए पात्रता चाहिए । इस कठिनाई को शिव ने अपनी जटाओं में गंगा को धारण करके हल कर दिया ।

गंगा का अवतरण हुआ। सगर पुत्र उसके प्रताप से स्वर्ग को गये और असंख्यों को उसका लाभ मिला।

आत्म-शक्ति का-ऋतम्भरा प्रज्ञा का अवतरण ठीक गंगावतरण स्तर का है। उसकी पुनरावृत्ति की आज अत्यधिक आवश्यकता है। सारा संसार पाप-तापों से जल रहा है। इस विकृति से छुटकारा उसे उत्कृष्टता और आदर्शवादिता की ज्ञान गंगा ही दिला सकती है। यह अवतरण अनायास ही नहीं होगा। इसके लिए जाग्रत आत्माओं को भगीरथ की भूमिका निभानी पड़ेगी। ज्ञान-यज्ञ के विस्तार के लिए-भावनात्मक नव निर्माण के लिए निःस्वार्थ-परमार्थ परायण प्रबल पुरुषार्थ करना पड़ेगा। ऐसा करने से वह कठिन और असम्भव दीखने वाली प्रक्रिया सम्भव ही नहीं, सरल भी हो सकती है। उस युग परिवर्तनकारी प्रचण्ड शक्ति को यश लोलुप एवं अहन्ता पोषक, क्षुद्र व्यक्ति धारण नहीं कर सकते। उसे धारण करने के लिए तपस्वी, मनस्वी और तेजस्वी शंकर चाहिए। ऐसी महानता सम्पन्न विभूतियाँ जब इस नवयुग प्रवर्तिनी ज्ञान गंगा को अपने मस्तक में धारण कर लेंगी, तब उसका प्रवाह आगे बढ़ेगा। न केवल कुबुद्धि और दुर्भावनाग्रस्त पतनोन्मुख सगर सुतों का उद्धार होगा, वरन् सर्वसाधारण की सुख-शान्ति का द्वार भी खुल जाएगा। हमें भगीरथ और शंकर की भूमिका निभाते हुए ज्ञान गंगा के अवतरण के लिए गायत्री जयन्ती के पुण्य पर्व पर व्रत लेना चाहिए और उसके लिए कटिबद्ध होना चाहिए।

यह पर्व महत्वपूर्ण प्रेरणाएँ देता है। स्वर्ग से उतरकर धरती पर अवतरण। हिमालय की सुख-सुविधाओं को त्याग, कष्टसाध्य लोकमंगल की प्रवृत्ति। लघुता को महानता में परिणत करने वाला-समुद्र मिलन का लक्ष्य, इसके लिए यात्रा द्वारा अपनी पात्रता सिद्ध करने के लिए सुदूर प्रदेशों का सिंचन करने की तप साधना। भूमि की तृष्णा बुझाने के लिए अपना अस्तित्व गवाँ देने की साध। इस महानता से हरेक को प्रभावित कर सहायता के लिए तत्पर, हिमालय का अजस्र अनुदान, बादलों का आश्वासन, नदी-नालों का आत्म समर्पण जैसी उपलब्धियों का प्रादुर्भाव। गंगोत्री की तनिक-सी धारा का बंगाल पहुँचते-पहुँचते हजार धाराओं में विस्तार। यही महानता गंगा अवतरण की प्रक्रिया है। जिस व्यक्ति में भी वह अवतरित

होती है, उसे गंगा जैसा दृष्टिकोण चरित्र और कर्तव्य अपनाना होता है। गायत्री अपना प्रत्यक्ष उदाहरण प्रस्तुत करते हुए मानों प्रत्येक जाग्रत आत्मा को यह उद्बोधन प्रदान करती है कि जीवन के श्रेष्ठतम सदुपयोग का क्रिया-कलाप यही हो सकता है।

गायत्री मन्त्र के २४ अक्षरों में २४ शिक्षाएँ हैं, जो आज भी व्यक्ति और समाज के लिए सही मार्गदर्शक हैं। ये शिक्षाएँ गायत्री स्मृति के २४ श्लोकों में विद्यमान हैं। इसी प्रकार गायत्री मन्त्र में ९ शब्द ३ व्याहृतियाँ १ प्रणव- इन १३ पदों की १३ श्लोकों के रूप में विवेचना “गायत्री गीता” में की गई है। इन दोनों संकल्पों को गायत्री महाविज्ञान के द्वितीय खण्ड में पढ़ा जा सकता है और उस आधार पर गायत्री मन्त्र के प्रकाश में व्यक्ति निर्माण और समाज निर्माण का आधार क्या होना चाहिए, इसके सभी प्रधान पक्षों पर प्रकाश डाला जा सकता है। साधारणतया गायत्री मन्त्र का मोटा शब्दार्थ भी बहुत प्रेरक और प्रकाशपूर्ण है।

भूः भुवः स्वः तीन लोक हैं, तीनों में ॐ परमात्मा समाया हुआ है। वही शीर्ष भाग का प्रणव और व्याहृतियों का तात्पर्य है। भूः शरीर को, भुवः मन को और स्वः अन्तरात्मा को कहते हैं। इन्हीं को स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीर भी कहा जा सकता है। इनमें परमात्मा व्याप्त है। यह परमात्मा का घर है। देव मंदिर तीर्थ है। इन्हें सदा निर्मल एवं परिष्कृत ही रखा जाना चाहिए। इनमें दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों की मलीनता को स्थान नहीं मिलना चाहिए। व्यक्ति, परिवार और समाज भी भूः भुवः, स्वः हैं। इन्हें परमात्मा का मूर्तिमान् स्वरूप, उत्तरदायित्व समझा जाए और उन्हें श्रेष्ठतम स्थिति में रखने के लिए निरन्तर तत्पर रहा जाए, यह प्रेरणा गायत्री के शीर्ष भाग की- “भूः भुवः स्वः” की है।

“तत्” अर्थात् “वह”। यह अर्थात् प्रत्यक्ष-प्रेय। वह अर्थात् परोक्ष श्रेय। हमें वासुना और तृष्णापरक लोभ-मोह में ग्रस्त होकर लोभ और मोह की वासना-अहंता की पूर्ति में लगे रहकर प्रत्यक्ष भौतिकता तक अपने को सीमित नहीं कर लेना चाहिए। “यह” को ही सब कुछ नहीं समझ लेना चाहिए। वरन् “वह” पर भी ध्यान देना चाहिए। अन्तरात्मा की पुकार, मरणोत्तर स्थिति, ईश्वरीय निर्देशों की पूर्ति, पवित्र कर्तव्यों का निर्वाह जैसे

महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर भी ध्यान देना चाहिए। सीमित संकीर्णता में चिन्तन अवरुद्ध न रखकर, विस्तृत, उदात्त, दूरगामी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और अपनी कार्य पद्धति उसी आधार पर निर्धारित करनी चाहिए। यही है गायत्री के प्रथम पद “तत्” का सन्देश।

“सवितुः” सृजनकर्ता- तेजस्वी, ईश्वर इन दो महान् विशेषताओं से परिपूर्ण है, हम भी उनका अनुसरण करें। ध्वंसात्मक-विघटनात्मक प्रवृत्तियाँ छोड़ें और सृजनात्मक-विधेयात्मक क्रिया-कलाप अपनाएँ। हम क्या कर सकते हैं, क्या बन सकते हैं, इसी पर ध्यान केन्द्रित रखें। संसार में जो कुछ अवांछनीय है, वह वांछनीयता के अभाव भर का द्योतक है। प्रकाश का न होना ही अन्धकार है। अन्धकार से लड़ते फिरना बेकार है। प्रकाश उत्पन्न करें, ताकि अन्धकार सहज ही तिरोहित हो सके।

दूसरा अर्थ है-तेजस्वी। दासता, मलिनता, विलासिता की दुष्प्रवृत्तियों में बँधना सर्वथा अस्वीकार कर दें। आत्मगौरव को समझें-स्वतन्त्र चिन्तन एवं कर्तव्य अपनाएँ-सर्वतोमुखी स्वच्छता में गहरी अभिरुचि लें तथा भव-बन्धनों से मनोभूमि को, असंयम से शरीर को, अवांछनीय प्रचलनों से समाज को बन्धन मुक्त कराएँ। सर्वांगीण मुक्ति का लक्ष्य लेकर चलें, यही तेजस्वी होने का स्वरूप है। इसके लिए हमें मनस्वी और तपस्वी होना चाहिए; ताकि हमारी दीपक जैसी उपयोगी तेजस्विता का प्रकाश और प्रभाव सर्वत्र अनुभव किया जा सके। उसके आधार पर स्वर्गीय वातावरण का सृजन हो सके। यह है-सविता शब्द के सृजनकर्ता और तेजस्वी होने का सही स्वरूप।

“वरेण्यं” का अर्थ है- वरण करने-योग्य, चुने जाने योग्य। इस संसार में कूड़ा-करकट भी कम नहीं। ओछे विचार-मूढ़ मान्यताएँ-हेय परम्पराएँ तथा छोटे व्यक्तियों से दुनियाँ भरी पड़ी है। इनमें केवल वरेण्य-श्रेष्ठ उचित को ही अपनाया जाए और जो अवांछनीय भरा पड़ा है, उसे न तो स्वीकार किया जाए और न सहयोग दिया जाए।

“भर्गः” शब्द का अर्थ भून देना होता है। अपने भीतर की दुर्भावनाओं को, गुण-कर्म-स्वभाव में भरी अवांछनीयताओं को छोड़ना-तोड़ना ही चाहिए। परिवार में जो अस्त-व्यस्तता और अव्यवस्था का क्रम चल रहा हो, उसे बदला जाना चाहिए। समाज के प्रत्येक क्षेत्र में जो दुष्प्रवृत्तियाँ घुस पड़ी

हैं, उन्हें उखाड़ा ही जाना चाहिए। अनीति के विरुद्ध संघर्ष के लिए गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिये हैं, उन्हीं को गायत्री का ‘भर्ग’ शब्द देता है। धर्म की स्थापना और अधर्म का उन्मूलन करना भगवान् के अवतार का प्रधान उद्देश्य रहा है। भाड़ में जिस तरह चने भूने जाते हैं, उसी तरह हमारी तेजस्विता “अवांछनीयता” को भूनने में तत्पर रहे, यह भर्ग शब्द की प्रेरणा है।

“देवस्य” शब्द देवत्व की ओर संकेत करता है। लोग लेने भर का मजा लूटते हैं, देने का आनन्द उससे कितना अधिक मधुर है, इस का आस्वादन कोई कर सके, तो उसका अन्तःकरण निरन्तर आनन्द एवं उल्लास से ओत-प्रोत बना रहे। जिसका स्वभाव देना हो, वह ‘देव’। जिसे तृष्णा खाये जा रही हो, वह “दानव”। हमें दानव नहीं, देव बनना चाहिए। अनुकरणीय देव जीवन जीना चाहिए। मस्तिष्क में दिव्य दर्शन करते रहना चाहिए। समाज को देवात्माओं से भरा हुआ-स्वर्गीय परिस्थितियों से ओत-प्रोत बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। देवाराधना का तात्पर्य देव प्रवृत्तियों का अभिवर्धन ही है। गायत्री मन्त्र का देव शब्द इसी दिशा में निर्देश करता है।

“धीमहि” का अर्थ है- धारण करना। जो श्रेष्ठ है- धर्म का कर्तव्य है, उसे केवल कहने-सुनने, पढ़ने-लिखने के वाग् विलास तक ही सीमित न रखें, वरन् उसकी जड़ें अपने मस्तिष्क से आगे बढ़ाकर भाव क्षेत्र में, आकांक्षाओं में उतारें और उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयत्न करें। कथा, प्रवचन, स्वाध्याय, सत्संग, मनन, चिन्तन के सहारे बहुधा उच्च आदर्शों की सुधार पद्धति से अपना सम्बन्ध, सम्पर्क बनाया जाता है; पर यदि वहीं तक इस क्षेत्र में सीमित होकर रहा जाए, जड़ न जमाए, निष्ठा के रूप में परिणत न हो, कार्य-पद्धति में स्थान न पाए, तो उसे न उगने वाले बीज की संज्ञा दी जायेगी। गायत्री का ‘धीमहि’ शब्द कहता है, औचित्य को स्वीकार करना ही पर्याप्त नहीं, तदनुकूल आचरण भी करना चाहिए।

“धियो” का अर्थ है- बुद्धि, विवेक, आस्था। इसी बीज का विकसित स्वरूप है-व्यक्तित्व। भीतर जैसी भी स्थिति मनुष्य की है, उसका बाह्य क्रिया-कलाप वातावरण लगभग उसी स्तर का बनता चला जाता है। यह

संकेत अन्तःकरण की आन्तरिक भाव निष्ठा की ओर है। जहाँ से बुद्धि, मन तथा शरीर की गतिविधियों को प्रेरणा मिलती है। हमारी आस्था-निष्ठा जब पशु-प्रवृत्तियों से भरी होती है, तो मस्तिष्क में आदर्शों के प्रवचन और शरीर में धार्मिकता के आडम्बर बढ़ते रहने पर भी बात कुछ बनती नहीं है, दम्भ भर विकसित होता रहता है। गायत्री का “धियो” शब्द आस्था, निष्ठा, आकांक्षा के मर्मस्थल को स्पर्श करने और परिवर्तन की चाबी वहीं से घुमाने की ओर संकेत करता है। ‘धियो’ का अर्थ यहाँ ऋतम्भरा प्रज्ञा से है। साधारण समझदारी और बुद्धिमानी को भी सन्मार्गगामी बनाने की उसमें शिक्षा समाविष्ट है।

“यो नः” अर्थात्- हमारा - हम सबका। एकाकीपन निकम्मी चीज है। अपने लिए ही धन, भोग, यश, वैभव, पद, सत्ता एकत्रित करने में सभी लोग लगे रहते हैं। तथाकथित भक्त एवं धर्मात्मा भी इसी गलित कुष्ठ के रोगी देखे जाते हैं। उन्हें भी अपने लिए ही स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, प्रतिष्ठा चाहिए। इस क्षुद्रता के कारण उनकी पूजा उपासना भी व्यापारी-व्यवसायियों की भाँति अपनेपन की संकीर्णता में ही उलझी रह जाती है। न उससे उनका लाभ होता है और न समाज का। स्वार्थी वस्तुतः ओछेपन का नाम है, जो अपनी उपलब्धियों से न स्वतः लाभान्वित हो सकता है और न दूसरे को होने देता है। कोई एकाकी व्यक्ति उन्नति करे भी, तो ऐसे दूषित वातावरण में उसका लाभ नहीं ले सकता। दुष्ट और ईर्ष्यालु उसे अकारण ही सताते रहेंगे और चैन से न बैठने देंगे। गायत्री मन्त्र का ‘योनः’ शब्द यही प्रेरणा देता है कि जो भी सोचना हो “मैं” की तुच्छ परिधि में नहीं, वरन् “हम” को ध्यान में रखकर सोचना तथा करना चाहिए-अपने को समाज का एक घटक मानना चाहिए और सामाजिक प्रगति में ही अपनी प्रगति की झाँकी देखनी चाहिए।

“प्रचोदयात्” अर्थात् प्रेरणा दे। परमात्मा से प्रार्थना है कि आपने हमें भौतिक सुविधाएँ उपार्जित करने में समर्थ बुद्धियुक्त शरीररूपी यन्त्र दे दिया, अब भौतिक क्षेत्र में हमारा माँगना और आपका देना व्यर्थ है। पात्रता के अभाव में यदि प्रस्तुत उपलब्धियों से ही लाभ उठा सकना अपने लिए सम्भव न हो, तो आगे बढ़ा हुआ वैभव अधिक तृष्णा और अधिक दुष्टता ही उत्पन्न करेगा। सदुपयोग न आने पर ही मनुष्य अपने को अभावग्रस्त समझता है

और उसका निराकरण वस्तुओं से नहीं, आन्तरिक समाधान में ही सम्भव होता है। अस्तु, परमात्मा से एक ही प्रार्थना गायत्री मन्त्र में की गई है कि वे हमें सन्मार्ग पर चलने की आकांक्षा जगा दें, उधर चलने का साहस प्रदान करें और घसीटते हुए उस कल्याण मार्ग पर नियोजित कर दें। यही प्रार्थना है कि “घुनने और धुनने” में समय नष्ट करते रहने की कुण्ठा को हटाएँ। कुत्साओं से विरत हों और शरीर एवं मन को उस मार्ग पर धकेलें, जिससे मानव जीवन का प्रयोजन पूरा होता है। गायत्री मन्त्र का अन्तिम चरण उत्कृष्ट विचारणा को साहसिक प्रेरणा में-व्यावहारिक गतिविधियों में परिणत करने का आग्रह करता है। उसी बिन्दु पर वह अत्यधिक जोर देता है।

यही है, गायत्री मन्त्र के शब्दों में समायुक्त हुआ मोटा; किन्तु अति महत्त्वपूर्ण-भावपूर्ण और तथ्यपूर्ण अर्थ। इन्हीं की परिधि में वक्ताओं को अपने प्रतिपादन अपने ढंग से प्रस्तुत करते हुए, गायत्री मन्त्र की व्याख्या करनी चाहिए और उपस्थित लोगों के मनःक्षेत्र को इस महाशक्ति की प्रेरणाओं से आलोकित करना चाहिए।

गायत्री का वाहन है- हंस। हंस का अर्थ है स्वच्छ कलेवर। दाग-धब्बों से कलंक-कालिमाओं से बना हुआ जीवन हंस कैसे कहा जायेगा? जिसे नीर-क्षीर विवेक करना आता है, जो दूध में से पानी हटा देता है, दूध ही ग्रहण करता है, वह हंस है, जीवन को बिना दाग-धब्बे का स्वच्छ-निर्मल चरित्र रखने का प्रयत्न करने वाला तथा अनुचित का सर्वथा त्याग, औचित्य कष्टसाध्य होते हुए भी उसे अंगीकृत करने की नीति, हंस प्रवृत्ति है। जिन्होंने यह नीति अपनाई, उन्हीं को गायत्री माता अपना वाहन बनायेंगी। उन्हीं पर विशेष कृपा करेंगी। यह तथ्य भी इस अवसर पर उपस्थित लोगों को समझाया जाना चाहिए। गंगा और गायत्री के जन्मदिन का पुनीत पर्व हमारे कर्म में गंगा जैसी सरसता और चिन्तन में गायत्री जैसी ज्योति उत्पन्न करे, इसी प्रेरणा को अधिकाधिक गहराई तक हृदयंगम किया जाए।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

देव मंच पर आद्यशक्ति गायत्री और गंगावतरण के चित्रों की झाँकी सजाई जाए। पर्व व्यवस्था क्रम के अनुरूप प्रारम्भिक उपचार करते हुए रक्षाविधान तक के क्रम यथाशक्ति पूरे कराये जाएँ।

पर्व पर विशेष रूप से आद्यशक्ति की तीन धाराओं वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता का, हंस का तथा पतितपावनी गंगा का आवाहन करें। प्रत्येक आवाहन के पूर्व उनकी गरिमा का संक्षिप्त, सारगर्भित विवरण दें। फिर भावना संचार के सकेत देते हुए मन्त्रोच्चारपूर्वक आवाहन करें।

॥ वेदमाता आवाहन ॥

वेद अर्थात् ज्ञान की माता। हमारे आवाहन के साथ “माँ” वह दिव्य ज्ञान प्रकाश के रूप में अवतरित हो, जो अज्ञान, अशक्ति, अभाव से मुक्ति दिलाकर आदर्श लक्ष्य तक पहुँचने में समर्थ बना दे। दिव्य ज्ञान की उपलब्धि और उसे धारण करने व उपयोग में लाने की पात्रता को माँ सम्भव बनाए।

ॐ नमस्ते सूर्य संकाशे, सूर्ये सावित्रिकेऽमले।

ब्रह्मविद्ये महाविद्ये, वेदमातर्नमोऽस्तुते ॥ - गा० पुर० प०

ॐ स्तुता मया वरदा वेदमाता, प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं, द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा, व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

ॐ श्री वेदमात्रे नमः।

- अथर्व० १९.७१.१

॥ देवमाता आवाहन ॥

देवत्व, सद्बृत्ति, सदाचार की जननी। माँ दिव्य उल्लास प्रवाह के रूप में जन-जन में प्रस्फुटित हो। वह माँ हमारा भावभरा पूजन स्वीकार करे, दीनता और दुष्टता का निवारण करके हमारे जीवन को देवोपम बनाने के लिए अँगुली पकड़कर आगे बढ़ाएँ।

ॐ देवस्येति तु व्याकरोत्यमरतां, मर्त्योऽपि सम्प्राप्यते,
देवानामिव शुद्धदृष्टिकरणात्, सेवोपचाराद् भुवि।

निःस्वार्थपरमार्थकर्मकरणात्, दीनाय दानात्तथा,

बाह्याभ्यन्तरमस्य देवभुवनं, संसृज्यते चैव हि ॥ गा० गी०

ॐ श्री देवमात्रे नमः।

॥ विश्वमाता आवाहन ॥

जगन्माता उस आत्मीयभाव सहित अवतरित हो, जो स्वार्थपरता का उच्छेदन करके हमें मनुष्यता के गौरव का अधिकारी बना दे। विश्वपरिवार, विश्वसंस्कृति, विश्व व्यवस्था के आदर्श को साकार करने की शक्ति दें।

ॐ त्वं मातः सवितुर्वरेण्यमतुलं, भर्गः सुसेव्यः सदा,

यो बुद्धीर्नितरां प्रचोदयति नः, सत्कर्मसु प्राणदः।

तद्रूपां विमलां द्विजातिभिरुपा, स्यां मातरं मानसे,

ध्यात्वा त्वां कुरुशं ममापि जगतां, सम्प्रार्थयेऽहं मुदा ॥

ॐ श्री विश्वमात्रे नमः।

- गा० पु० प०

॥ हंस आवाहन ॥

आद्यशक्ति का वाहन हंस है। जीव को भी हंस कहा गया है। हंस-चेतना, विवेक, निर्मलता का अवतरण हो। उसके पूजन से हम सब भी महाशक्ति को धारण करके गतिशील होने में समर्थ हो सकें।

ॐ परमहंसाय विद्महे, महाहंसाय धीमहि।

तन्नो हंसः प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री हंसाय नमः। - हं० गा०

॥ गंगा आवाहन ॥

पतित पावनी, लोक कल्याणकारी माँ गंगा, पवित्र परमार्थ वृत्ति सहित पधारें। पापों-कल्मषों की कालिमा धोकर हमें निर्मल बनाएँ।

ॐ पंचनद्यः सरस्वती मपि यन्ति सस्त्रोतसः।

सरस्वती तु पंचधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ - ३४.११

ॐ शैलेन्द्रादवतारिणी निजजले, मज्जज्जनोत्तारिणी,

पारावार विहारिणी भव-भय, श्रेणी समुत्सारिणी।

शेषाहेरनुकारिणी हरशिरोवल्लीदलाकारिणी,
काशीप्रान्तविहारिणी विजयते, गंगामनोहारिणी ॥

ॐ श्री गंगायै नमः ॥

आवाहन के बाद सबका संयुक्त पूजन पुरुष सूक्त से किया जाए। पूजन के उपरान्त पर्व प्रसाद-संकल्प धारण कराया जाए।

.....नामाहं युगशक्ति महाप्रज्ञागायत्री-अवतरणपर्वणि
त्रिपदासाधनां स्वयं सम्पादयितुं अद्यप्रभृति च ... जनान्
एतत्साधनायां नियोक्तुं श्रद्धापूर्वकं संकल्पयिष्ये।

संकल्प के बाद यज्ञ, दीपयज्ञ सहित समापन के सामान्य अनुशासन क्रम से आयोजन पूर्ण किया जाए।

* * *

॥ गुरुपूर्णिमा ॥

माहात्म्य बोध- गुरु पूर्णिमा को अनुशासन पर्व भी कहा जाता है। सामान्यरूप से भी सिखाने वाले गुरुजनों का अनुशासन स्वीकार किये बिना कुशलता में निखार नहीं आ सकता। जहाँ यह आवश्यक है कि गुरुजनों को अपना क्रम ऐसा बनाकर रखना चाहिए कि शिष्य वर्ग में उनके प्रति सहज श्रद्धा-सम्मान का भाव जागे, वहाँ यह भी आवश्यक है कि सीखने वाले, शिष्य भाव रखें, गुरुजनों का सम्मान और अनुशासन बनाये रखें। इस दृष्टि से यह पर्व गुरु-शिष्य दोनों वर्गों के लिए अनुशासन का सन्देश लेकर आता है, इसलिए अनुशासन पर्व कहा जाता है। अनुशासन मानने वाला ही शासन करता है, यह तथ्य समझे बिना राष्ट्रीय या आत्मिक प्रगति सम्भव नहीं है।

गुरु पूर्णिमा पर व्यास पूजन का भी क्रम है। जो स्वयं चरित्रवान् हैं और वाणी एवं लेखनी से प्रेरणा संचार करने की कला भी जानते हैं, ऐसे आदर्शनिष्ठ विद्वान् को व्यास की संज्ञा दी जाती है। गुरु व्यास भी होता है। इसलिए गुरु-पूजा को व्यास पूजा भी कहते हैं। वैसे महर्षि व्यास अपने आप में महान् परम्परा के प्रतीक हैं। आदर्श के लिए समर्पित प्रतिभा के वे उत्कृष्ट

उदाहरण हैं। लेखक-वक्ता यदि लेखनी, तूलिका, वाणी द्वारा भाव सृजन की क्षमता रखने वाले कलाकार यदि व्यासजी का अनुसरण करने लगें, तो लोक कल्याण का आधा रास्ता तो पार हुआ माना ही जा सकता है- यह भी एक अनुशासन है। आध्यात्मिक स्तर पर गुरु-शिष्य के सम्बन्धों में तो अनुशासन और भी गहरा एवं अनिवार्य हो जाता है। गुरु शिष्य को अपने पुण्य, प्राण और तप का एक अंश देता है। वह अंश पाने की पात्रता, धारण करने की सामर्थ्य और विकास एवं उपयोग की कला एक सुनिश्चित अनुशासन के अन्तर्गत ही सम्भव है। वह तभी निभता है, जब शिष्य में गुरु के प्रति गहन श्रद्धा-विश्वास तथा गुरु में शिष्य वर्ग की प्रगति के लिए स्नेह भरी लगन जैसे दिव्य भाव हों। गुरु पूर्णिमा पर्व गुरु-शिष्य के बीच ऐसे ही पवित्र, गूढ़-अंतरंग सूत्रों की स्थापना और उन्हें दृढ़ करने के लिए आता है। गुरु पूर्णिमा पर्व मनाने वालों को नीचे लिखे तथ्य ध्यान में रखने चाहिए।

* गुरु व्यक्ति रूप में पहचाना जा सकता है, पर व्यक्ति की परिधि में सीमित नहीं होता। जो शरीर तक सीमित है, चेतना रूप में स्वयं को विकसित नहीं कर सका, वह अपना अंश शिष्य को दे नहीं सकता। जो इस विद्या का मर्म नहीं, वह गुरु नहीं और जो शिष्य गुरु को शरीर से परे शक्ति सिद्धान्त रूप में पहचान-स्वीकार नहीं कर सका, वह शिष्य नहीं।

* गुरु शिष्य पर अनुशासन दृष्टि रखता है और शिष्य गुरु से निरन्तर निर्देश पाता, उन्हें मानता-अपनाता रहता है। यह चिन्तन स्तर पर, वाणी द्वारा एवं लिखने-पढ़ने के स्तरों पर सम्भव है। जिनके बीच इस प्रकार के सूत्र स्थापित नहीं, उनका सम्बन्ध चिह्न-पूजा मात्र कहा जाने योग्य है और गुरु-शिष्य का अन्ध-बधिर का जोड़ा बन कर रह जाता है।

* भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध दाता-भिखारी जैसा नहीं, सहयोगी-साझेदारी स्तर का बनाया जाता है। गुरु-शिष्य को अपनी दिव्य संपदा की कमाई का एक अंश देता रहता है, जो अनुशासनपूर्वक प्रयुक्त किया जाकर शिष्य के व्यक्तित्व को ऊँचा उठाता है। उठे हुए व्यक्तित्व के द्वारा शिष्य भी लौकिक-पारलौकिक कमाई करता है।

* इसी प्रकार शिष्य अपनी कमाई, श्रद्धा, पुरुषार्थ, प्रभाव एवं सम्पदा का एक अंश गुरु को समर्पित करता रहता है। इनके उचित उपयोग से गुरु

का लोकमंगल अभियान विकसित होता है और उसका लाभ अधिक व्यापक क्षेत्र तक पहुँचने लगता है, इससे गुरु की पुण्य - सम्पदा बढ़ती है और उसका अधिकांश भाग शिष्यों के हिस्से में आने लगता है। जहाँ इस प्रकार की दिव्य साझेदारी नहीं, वहाँ गुरु-शिष्य सम्बन्ध अपनी संस्कृति में वर्णित असामान्य उपलब्धियाँ पैदा नहीं कर सकते।

* जहाँ गुरु अपने स्नेह-तप से शिष्य का निर्माण-विकास कर सकता है, वहाँ शिष्य को भी अपनी श्रद्धा-तपश्चर्या से गुरु का निर्माण एवं विकास करना होता है। इतिहास साक्षी है कि जिन शिष्यों ने अपनी श्रद्धा-संयोग से गुरु का निर्माण किया, उनको ही चमत्कारी लाभ मिले। द्रोणाचार्य कौरवों के लिए सामान्य वेतन भोगी शिक्षक से अधिक कुछ न बन सके। पाण्डवों के लिए अजेय विद्या के स्रोत बने। एकलव्य के लिए एक अद्भुत चमत्कार बन गये, अन्तर था-श्रद्धा-संयोग से बने गुरु तत्त्व का। रामकृष्ण परमहंस जन सामान्य को बाबाजी से अधिक कुछ लाभ न दे सके; किन्तु जिसने अपनी श्रद्धा से उन्हें गुरु रूप में विकसित कर लिया, उनके लिए अवतार तुल्य सिद्ध हुए। अस्तु, शिष्यों को अपनी श्रद्धा, तपश्चर्या, साधना द्वारा सशक्त गुरु निर्माण का प्रयास जारी रखना चाहिए, गुरु-पर्व यही अवसर लेकर आता है।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

*पर्व पूजन मंच पर ब्रह्मा-विष्णु-महेश के चित्र अथवा उनके प्रतीक रखने चाहिए। यदि एक ही विचारधारा के व्यक्ति एकत्रित हैं, तो शरीर-धारी गुरु का चित्र भी रख सकते हैं। यदि विभिन्न धाराओं से सम्बद्ध व्यक्ति एकत्रित होने वाले हैं, तो गुरु का प्रतीक नारियल रख लेना चाहिए।

* प्रारम्भिक उपचार पर्व विधान के अनुसार करा लेना चाहिए। विशेष पूजन के लिए क्रमशः गुरु आवाहन एवं ब्रह्मा-विष्णु-महेश का आवाहन करना चाहिए। गुरु तीनों धाराओं का संगम होता है। प्रत्येक आवाहन के पूर्व उनकी गरिमा का उल्लेख गिने-चुने शब्दों में किया जाए, फिर भाव संकेत देते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहन किया जाए।

॥ गुरु आवाहन ॥

गुरुसत्ता, जो ईश्वरीय सत्ता का ही एक अंश है, हमारी प्रार्थना पर अपने

आपको प्रकट कर दे, ताकि हम उसको समझ सकें, उपयोग कर सकें। हम उनके अनुशासन पालने का विश्वास दिलाते हुए उनका भाव - भरा आवाहन करते हैं। हाथ में अक्षत- पुष्प लेकर गुरु का आवाहन करें।

ॐ आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं, ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्।

योगीन्द्रमीड्यं भवरोग वैद्यं, श्रीसद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥

गुरुर्गुरुतमो धाम, सत्यः सत्यपराक्रमः।

निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी, वाचस्पतिरुदारधीः॥

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं, व्योमातीतं निरञ्जनम्।

बिन्दुनादकलातीतं, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ - गु० गी०४८

ॐ श्री गुरवे नमः ॥

॥ ब्रह्मा आवाहन ॥

शिष्य के नाते अपने अन्तरंग एवं बहिरंग क्षेत्र में जो संरचनाएँ करनी हैं, उनके निर्माण के लिए आदि स्रष्टा ब्रह्मा का आवाहन करते हैं, उन्हीं की कृपा से हम नई सृष्टि कर सकेंगे। मनुष्य में देवत्व का उदय सम्भव होगा- ॐ चतुर्मुखाय विद्महे, हंसारूढाय धीमहि।

तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री ब्रह्मणे नमः ॥- ब्र० गा०

॥ विष्णु आवाहन ॥

गुरु द्वारा प्रदत्त तथा पुरुषार्थ द्वारा जाग्रत् सत् तत्त्वों, सद् आकांक्षाओं-परम्पराओं के पोषण-विकास के लिए, पालनकर्ता विष्णु का आवाहन करते हैं। जिनकी कृपा से ही पोषित सत् तत्त्वों से धरती पर स्वर्ग का अवतरण साकार होगा।

ॐ नारायणाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि।

तन्नो विष्णुः प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री विष्णवे नमः ॥- वि० गा०

॥ महेश आवाहन ॥

अनुपयुक्त के हर्ता रुद्र, कल्याणकारी परिवर्तन चक्र के अधिष्ठाता शिव का आवाहन करते हैं। उन्हीं की कृपा के संयोग से जन पुरुषार्थ पतनोन्मुख धारा को पलटकर उत्कर्ष की दिशा दे सकेगा। अवांछनीयता की

गलाई और सदाशयता की ढलाई का क्रम चलेगा ।

ॐ तत्पुरुषाय विद्महे , महादेवाय धीमहि ।

तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री शिवाय नमः ॥ - २० गा०

॥ व्यास आवाहन ॥

महर्षि व्यास विद्वत्ता, प्रतिभा को आदर्शोन्मुख बनाने की प्रबल चेतना के रूप में अवतरित हों, उनके प्रभाव से ही प्रतिभा - मनीषा का भटकाव रुकेगा, कल्याण के मार्ग खुलेंगे ।

ॐ व्यासं व्यासकरं वन्दे, मुनिं नारायणस्वयम् ।

यतः प्राप्त-कृपा लोका, लोकामुक्ताः कलिग्रहात् ॥

नमः सर्वविदे तस्मै, व्यासाय कविवेधसे ।

चक्रे पुण्यं सरस्वत्या, यो वर्षमिव भारतम् ॥

ॐ श्री व्यासाय नमः ।

इस प्रकार आवाहन के बाद पुरुष सूक्त से संयुक्त गुरु विग्रह का पूजन किया जाए । पूजन के बाद पर्व-प्रसाद-संकल्प धारण कराएँ ।

..... नामाहं अद्यगुरुपूर्णिमापर्वणि गुरुरूपेण मार्गदर्शन-सहयोगदातृ - ईश्वरीयसत्तायाश्च - दिव्यानुशासनं अद्यप्रभृति.. पर्यन्तं परिपालनस्य श्रद्धापूर्वकं संकल्पं अहं करिष्ये ।

संकल्प के बाद गुरु के महान् उद्देश्यों के लिए अंश, समय, प्रभाव, ज्ञान, साधन आदि का उल्लेख कराया जा सकता है । यज्ञ-दीपयज्ञ आदि समापन उपचारों के बाद प्रसाद वितरण सहित पर्वायोजन समाप्त किया जाए ।

* * *

॥ श्रावणी पर्व ॥

माहात्म्य बोध- “एकोऽहं बहुस्याम्” की ब्रह्म आकांक्षा जिस दिन पूरी हुई, कहते हैं उस दिन श्रावणी थी । एक से बहुत होना, सहयोग, संपर्क, स्नेह के आधार पर आत्मा में उल्लास विकसित होता है और एकाकीपन की नीरसता दूर होती है । यही ब्रह्म ने किया, उसे अकेलापन भाया नहीं । अपनी विभूतियों को अपने तक सीमित रखकर, भला वह उस स्थिति में सन्तुष्ट भी कैसे रहता ? विष्णु की नाभि में से कमल नाल निकली और वह पुष्प बनकर खिल पड़ी । उसी मकरन्द का भ्रमर ब्रह्मा है-प्रजापति । संकल्प शक्ति क्रिया में परिणत होती है और उसी का स्थूल रूप, वैभव एवं घटनाक्रम बनकर सामने आता है, नाभि में से अन्तरंग-बहिरंग बनकर विकसित होने वाली कर्मवल्लरी को ही पौराणिक अलंकार में कमलबेल कहा गया है, पुष्प इसी बेल का परिपक्व परिणाम है ।

सृष्टि का सृजन हुआ, उसमें दो तत्त्व प्रयुक्त हुए (१) ज्ञान (२) कर्म । इन दोनों के सम्मिश्रण से सूक्ष्म चेतना-संकल्प शक्ति स्थूल वैभव में परिणत हो गई और संसार का विशाल कलेवर बनकर खड़ा हो गया, जिसमें ऋद्धि-सिद्धियों का आनन्द-उल्लास भर गया-यह कमल की पंखुड़ियाँ हैं । मूल है ज्ञान और कर्म, जो ब्रह्म की इच्छा और प्रत्यावर्तन द्वारा सम्भव हुआ । ज्ञान और कर्म के आधार पर ही मनुष्य की गरिमा का विकास हुआ है, इन्हें जो जितना परिष्कृत एवं प्रखर बनाता चलता है, उसकी प्रगति पूर्णता की दिशा में उतनी ही तीव्र गति से होती है-इस तथ्य को स्मरण रखने के लिए भारतीय धर्म के दो प्रतीक हैं-एक ज्ञान ध्वज शिखा, जो मस्तकरूपी किले के ऊपर फहराई जाती है । दूसरा यज्ञोपवीत- कर्तव्य- मर्यादा, जिसमें मनुष्य को आगे और पीछे से पूरी तरह कस दिया गया है । शिखा स्थापना और यज्ञोपवीत धारण उसी ज्ञान और कर्म को परिष्कृत बनाये रखने की चेतावनी है, जो जीवन को उसके आदि उद्गम पर ही दे दी गई थी और जो अद्यावधि अपनी उपयोगिता यथावत् बनाये हुए है ।

श्रावणी पर्व पर पुराना यज्ञोपवीत बदला जाता है और नया पहना जाता है । प्रायश्चित्त संकल्प पढ़ते हैं और पिछले दिनों की हुई अवांछनीयताओं

का प्रायश्चित्त विधान सम्पन्न करते हैं। ऋषि पूजन भी इसी समय किया जाता है और वेद पूजन भी। वेद अर्थात् सदज्ञान। ऋषि अर्थात् वे व्यक्ति जो सदज्ञान को सत्कर्म में परिणत करने के लिए साहसिक तपश्चर्या करते हैं, कष्टसाध्य रीति-नीति अपनाते हैं। शिखा में सिंचन, यज्ञोपवीत, नवीनीकरण एक प्रकार से उनका वार्षिक संस्कार हैं, जैसे हर साल जन्मदिन और विवाह दिन मनाये जाते हैं। मोटर, रेडियो, बन्दूक आदि के लाइसेन्स नये होते हैं, उसी प्रकार यज्ञोपवीत और शिखा जैसे प्रकाश स्तम्भों को कहीं उपेक्षा विस्मृति के गर्त में तो नहीं डाल दिया गया- इसका निरीक्षण-विश्लेषण नवीनीकरण से करते हैं।

श्रावणी पर्व ब्राह्मण के ऋषित्व के अभिवर्धन का पर्व है। सदज्ञान एवं सत्कर्म की मर्यादाओं का कहीं खण्डन हुआ हो, तो उसके प्रायश्चित्त के लिए तथा उच्च आदर्शवादी जीवन को अधिक तेजस्वी बनाने के लिए इस पर्व पर आत्म संकल्प एवं परमात्म अनुदानों का योग करने का विधान बनाया गया है। सामूहिक रूप से संक्षिप्त ही सही; किन्तु भाव भरे उपचारों द्वारा यज्ञीय भाव जनमानस में जाग्रत् करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

॥ पर्व व्यवस्था ॥

श्रावणी पर्व पर द्विजत्व के संकल्प का नवीनीकरण किया जाता है। उसके लिए परम्परागत ढंग से लोग एकत्रित होकर तीर्थ आवाहन करके, दस स्नान, हेमाद्रि संकल्प एवं तर्पण आदि कर्म करते हैं। इसके लिए किसी जलाशय पर जाते हैं अथवा मंदिर आदि पवित्र स्थल पर जलपात्र-बाल्टी आदि के सहारे यह सब करते हैं। यह सब उपचार प्रायश्चित्त के अन्तर्गत आते हैं, उसके लिए नीचे लिखे अनुसार क्रम बना लेना चाहिए।

१. षट्कर्म (सामान्य प्रकरण) २. तीर्थ आवाहन ३. हेमाद्रि संकल्प (इसी पर्व में) ४. दसस्नान (पृष्ठ १०७) ५. यज्ञोपवीत नवीनीकरण (पृष्ठ २४५), यदि नवीन यज्ञोपवीत देना हो, तो यज्ञोपवीत प्रकरण से लें। वैसे समयाभाव में पृष्ठ-२४५ वाला प्रकरण भी पर्याप्त माना जा सकता है। ६. तर्पण (पृष्ठ-२७८) ७. अर्घ्यदान नमस्कार आदि (सामान्य प्रकरण से) कराकर परम्परागत श्रावणी उपाकर्म पूरा किया जा सकता है।

इस श्रावणी उपाकर्म में थोड़े से गिने-चुने लोग ही सम्मिलित हो पाते

हैं। शहरों में तो यह और भी कठिन हो जाता है। सामूहिक पर्व पूजन में बड़ी संख्या में लोग एकत्रित हो जाते हैं और उसमें कठिनाई भी नहीं होती। इसलिए जलाशय पर किये जाने वाले उपचारों के मूलभूत तत्त्व भी पर्व पूजन क्रम के साथ संयुक्त करके अधिक उपयोगी और अधिक पुण्यप्रद श्रावणी पर्व का सामूहिक क्रम यहाँ दिया जा रहा है, जहाँ उसे दो खण्डों में करना हो, वहाँ वैसा भी किया जा सकता है। श्रावणी पर सामूहिक पर्वायोजन का क्रम इस प्रकार चलाया जाना चाहिए।

* श्रावणी पर्व के लिए नर-नारी सभी में उत्साह रहता है। पूजन मंच के सामने बिठाने की व्यवस्था पहले से ही निर्धारित रहे।

* अभ्यागतों को दो वर्गों में विभक्त किया जाए। दोनों के लिए अलग-अलग खण्ड निश्चित रहें। एक खण्ड में केवल उन्हें बिठाया जाए, जो यज्ञोपवीत-परिवर्तन आदि सभी उपचारों में भाग लेंगे। दूसरा वर्ग जो केवल पूजन, रक्षाबन्धन, वृक्षारोपण जैसे गिने-चुने कर्मकाण्डों में ही भाग लेंगे। बालक-बालिकाएँ भी उसी वर्ग में रहें।

* सभी उपचार करने वालों को पूजनमंच के निकट तथा खुली पंक्तियों में बिठाएँ, ताकि बार-बार पूजन सामग्री देने, उपचार करने में कठिनाई न हो। सीमित उपचार वालों को अपेक्षाकृत सघन भी बिठाया जा सकता है।

* पर्व पूजन में प्रयुक्त होने वाली सभी वस्तुएँ पहले से समुचित मात्रा में रखी जाएँ, उन्हें कार्य प्रारम्भ के पूर्व जाँच लिया जाए, जैसे देवमंच की सज्जा, ब्रह्माजी का चित्र या प्रतीक नारियल, ऋषियों का प्रतीक कुशाओं का छोटा पूला। वेद पूजन के लिए पीले वस्त्र में लपेटी वेद की पुस्तक, पूजन सामग्री एवं पुष्प-अक्षत यथेष्ट मात्रा में, शिखा सिंचन के लिए चन्दन या सुगन्धियुक्त जल, यज्ञोपवीत परिवर्तन के लिए यज्ञोपवीत, रक्षाबन्धन के लिए कलावा-सूत्र, वृक्षारोपण के लिए तुलसी अथवा फूल लगाने योग्य वृक्षों की पौध। यदि यज्ञ करना है, तो उससे सम्बन्धित सभी सामग्री।

सभी व्यवस्था सटीक बनाकर, स्वयंसेवकों एवं संचालकों को उनके उत्तरदायित्व समझाकर पर्व पूजन प्रारम्भ करें। पूजन मंच पर प्रतिनिधि द्वारा षट्कर्म से लेकर रक्षाविधान तक के सभी उपचार, समय एवं परिस्थितियों की मर्यादा के अनुसार कराएँ। उसके बाद विशेष उपचार भावनापूर्वक प्रेरणा

उभारते हुए सम्पन्न कराये जाएँ। अन्त में यज्ञ अथवा दीपयज्ञ-आरती आदि के समापन प्रक्रिया के उपचार यथानुशासन कराये जाएँ।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

उपस्थित श्रद्धालुओं को संक्षेप में पर्व की भूमिका बतलाकर, भाव जागरण करके षट्कर्म आदि कृत्य कराएँ। कदाचित् सामूहिक रूप से षट्कर्म कराना सुलभ प्रतीत न हो तो ॐ अपवित्रः मन्त्र से सामूहिक अभिषिचन करके सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि कृत्य पूरे करें। तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र के साथ तीर्थ आवाहन करें-

ॐ पुष्करादीनि तीर्थानि, गंगाद्याः सरितस्तथा।

आगच्छन्तु पवित्राणि, स्नानकाले सदा मम॥

त्वं राजा सर्वतीर्थानां, त्वमेव जगतः पिता।

याचितं देहि मे तीर्थं, तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥

अपामधिपतिस्त्वं च, तीर्थेषु वसतिस्तव।

वरुणाय नमस्तुभ्यं, स्नानानुज्ञां प्रयच्छ मे॥

गंगे च यमुने चैव, गोदावरि सरस्वति।

नर्मदे सिन्धु कावेरि, जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

॥ हेमाद्रि संकल्प ॥

प्रेरणा प्रवाह- यह सृष्टि नियंता के संकल्प से उपजी है। हर व्यक्ति अपने लिए एक नई सृष्टि करता है, यह सृष्टि ईश्वरीय योजना के अनुकूल हुई, तो कल्याणकारी परिणाम उपजते हैं, अन्यथा अनर्थ का सामना करना पड़ता है। अपनी सृष्टि में चाहने, सोचने, करने में कहीं भी विकार आया हो, तो उसे हटाने तथा नई शुरुआत करने के लिए हेमाद्रि संकल्प करते हैं।

क्रिया और भावना- सभी के हाथों में संकल्प के अक्षत- पुष्प दें तथा भवनापूर्वक संकल्प दुहराने का आग्रह करें। भावना करें कि-

* हम विशाल तन्त्र के एक छोटे, किन्तु ग्रामाणिक पुर्जे हैं। विराट् सृष्टि ईश्वरीय योजना, देव संस्कृति के अनुरूप हमें बनना है, ढलना है।

* हमारे संकल्प के साथ वातावरण की शुचिता और देव अनुग्रह का

योगदान मिल रहा है। परमात्म सत्ता की प्रतिनिधि आत्मसत्ता उसके लिए पुलकित-हर्षित होकर सक्रिय हो रही है। मन्त्र-

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्यश्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे, श्रीश्वेतवाराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, भूलोके, जम्बूद्वीपान्तर्गते भारतवर्षे भरतखण्डे अस्मिन्वर्तमाने....क्षेत्रे.. मासे..... पक्षे..... तिथौ..... वासरे..... गोत्रोत्पन्नः....नामाहं ज्ञाताज्ञात - स्तेय - अनृतभाषण - नैष्ठुर्य- संकीर्णभाव - असमानता - कपट - विश्वासघात - कटूक्ति- पति-पत्नी व्रतोत्सर्ग- ईर्ष्या - द्वेष - कार्पण्य - क्रोध - मद- मोह- लोभ - मात्सर्य - जनक-जननी गुर्वादि-पूज्यजनअवज्ञा- जाति-लिंगादि - जनित-उच्चनीचादि असमता - मादकपदार्थ- सेवन - सुरापान - मांसादि अभक्ष्यआहार - आलस्य - अतिसंग्रह- द्यूतक्रीडा - इन्द्रियअसंयमानां स्वकृतचतुर्विंशति संख्यकानां दोषाणां परिहारार्थं श्रावणी उपाकर्म अहं करिष्ये।

॥ दसस्नान ॥

पृष्ठ १०७ के अनुसार दस-स्नान की प्रक्रिया सम्पन्न करें।

॥ शिखा सिंचन ॥

प्रेरणा प्रवाह- देव संस्कृति सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। उसके अनुकरण का वातावरण बने, तो ही उसका लाभ मिल सकता है, शिखा को उसका प्रतीक माना गया है। विचार सर्वोच्च साधन है। उन्हें उच्च आदर्शों से ही युक्त रखना चाहिए, इसके लिए स्वाध्याय का क्रम नियमित चलना चाहिए। अपनी सांस्कृतिक महानता का बोध, उसके प्रति गौरव की अनुभूति, उसे क्रियान्वित करने का प्रचण्ड उत्साह उभारने से जीवन धन्य अवश्य बनेगा।

क्रिया और भावना- सबकी बायीं हथेली पर सुगन्धित जल दिया जाए। मन्त्रोच्चारण के साथ दाहिने हाथ से शिखा को उस जल से सिंचित करें। भावना करें कि शरीर के ऊपरी भाग में मस्तिष्क के उच्चतम स्तर पर

सांस्कृतिक चेतना को स्थापित करके उसके द्वारा दिव्य तेजस्विता को धारण किया जा रहा है।

ॐ चिद्रूपिणि महामाये, दिव्यतेजः समन्विते।
तिष्ठ देवि शिखा मध्ये, तेजोवृद्धिं कुरुष्व मे ॥

॥ यज्ञोपवीत नवीनीकरण ॥

तदुपरान्त वानप्रस्थ प्रकरण पृष्ठ २४५ से यज्ञोपवीत नवीनीकरण उपचार की प्रेरणा तथा क्रिया लें। पंचदेवावाहन पूर्वक यज्ञोपवीत लेने वाले हों, तो उसकी भी व्यवस्था साथ ही की जा सकती है। इस नवीनीकरण का विस्तृत रूप यज्ञोपवीत प्रकरण से लेना पड़ेगा। समयभाव में वानप्रस्थ प्रकरण से भी विधि पूरी हो जाती है। यज्ञोपवीत नवीनीकरण के लिए सामूहिक पर्व में सब पर जोर न दें। जो इसके लिए पहले से तैयार हैं, उन्हें अलग से बिठा दें, उन्हीं का यज्ञोपवीत नवीनीकरण कराएँ। शेष सुनें-सुमझें और अन्य उपचारों में भाग लें।

॥ विशेष पूजन ॥

प्रेरणा प्रवाह- श्रावणी पर्व पर सामान्य देवपूजन के अतिरिक्त विशेष पूजन के लिए ब्रह्मा, वेद एवं ऋषियों का आवाहन किया जाता है। ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं। ब्राह्मी चेतना का वरण करने-अनुशासन पालन से ही अभीष्ट प्राप्ति हो सकती है। उस विद्या को जानने-अभ्यास में लाने वालों को ब्रह्मचारी, ब्राह्मण, ब्रह्मज्ञ आदि सम्बोधन दिये जाते रहे हैं। ब्रह्मा का आवाहन पूजन करके इन्हीं तथ्यों को प्रत्यक्ष करने का प्रयास किया जाता है।

वेद ज्ञान को कहते हैं। ज्ञान से ही विकास होता है। अज्ञान ही अवनति का मूल है। ज्ञान का प्रत्यक्षीकरण करने के लिए वेद आवाहन-पूजन करते हैं। ऋषि जीवन ने ही उच्चतम जीवनचर्या का विकास और अभ्यास करने में सफलता पाई थी, उनके अनुभवों-निर्देशों का लाभ उठाने के लिए ऋषि पूजन करते हैं। अमीरी नहीं महानता का चयन ही बुद्धिमत्तापूर्ण है। यह किसी आदर्श प्रेमी, ऋषि और किसी भ्रष्ट वैभवशाली का तुलनात्मक विश्लेषण करके जनता को समझाया जा सकता है कि कुमार्ग पर चलना कितना घातक

है। सौम्य जीवन अन्ततः कितना सुखद सिद्ध होता है, इसकी चर्चा ऋषि तत्त्व का प्रतिपादन करते हुए की जानी चाहिए।

॥ ब्रह्मा आवाहन ॥

ॐ ब्रह्मा सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमं सरः।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ - २३.४८

॥ वेद आवाहन ॥

ॐ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्, आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति, नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

- ३१.१८

॥ ऋषि आवाहन ॥

ॐ इमावेव गोतमभरद्वाजावयमेव गोतमोऽयं भरद्वाजऽइमावेव विश्वामित्रजमदग्नी अयमेव विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरिमावेव वसिष्ठकश्यपोवयमेव वसिष्ठोऽयं कश्यपो वागेवात्रिर्वाचा-
ह्यत्रमद्यतेऽतिहवै नामैतद्यदत्रिरिति सर्वस्यात्ता भवति सर्वमस्यान्नं भवति य एवं वेद ॥

- बृह० उ० २.२.४

आवाहन के पश्चात् षोडशोपचार पूजन पुरुष सूक्त से करें।

॥ रक्षा बन्धन ॥

प्रेरणा प्रवाह- श्रावणी पर रक्षा बन्धन बड़ा हृदयग्राही एवं सर्वप्रिय क्रम है। यह ऋषि परम्परा के अनुरूप मर्यादाओं के बन्धन से परस्पर एक दूसरे को बाँधने, अपने कर्तव्य निर्वाह का आश्वासन देने का अनोखा ढंग है।

* आचार्य-ब्राह्मण अपने यजमानों को रक्षा सूत्र बाँधते रहे हैं। उन्हें अनुशासन में बाँधकर कल्याणकारी प्रगति का अधिकारी बनाने के लिए अपने पवित्र कर्तव्यपालन का यह आश्वासन है, जो देव साक्षी में किया जाता है, इसके बिना मार्गदर्शक और अनुयायी एक दूसरे से लाभ नहीं उठा सकते।

* आज देश, धर्म, समाज, संस्कृति की चारों सीमाएँ किस प्रकार खतरे में हैं और उन्हें सुरक्षित रखने के लिए किस प्रकार सर्वसाधारण को धर्मयोद्धा

के रूप में, सृजन सेना के सैनिक के रूप में कटिबद्ध होना चाहिए? इसकी स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की जा सकती है, सृजन सेना के कर्तव्य में यह सब बताया गया है। कन्याओं द्वारा रक्षा बन्धन में एक और तत्त्व का समावेश है, वह है-नारी की गरिमा। इन दिनों कला के नाम पर जो दुःशासन-दुर्योधन जैसी धृष्टता की जा रही है, उसे रोकना। नारी को खिलौना बनाकर उसकी शालीनता को वैश्या स्तर पर गिराने की जो कुचेष्टा तथाकथित कलाकार, साहित्यकार और उसके माध्यम से पाप की कमाई करने वाले दुष्ट, जो अनाचार कर रहे हैं, उसे रोकने की भी प्रार्थना है। नारी को बहिन, पुत्री और माता की दृष्टि से देखने का अनुरोध तो प्रत्यक्ष ही रक्षाबन्धन में सन्निहित है।

नारी के प्रति पवित्र भावना की शक्ति का प्रमाण पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथानकों में मिलता है। इन्द्र को विजय तभी मिली, जब देवी शची ने पवित्र भाव से रक्षासूत्र बाँधा। अर्जुन, शिवाजी, छत्रसाल आदि महापुरुषों की सफलताओं के पीछे उनका नारी के प्रति पवित्र दृष्टिकोण भी असाधारण महत्त्व रखता है।

क्रिया और भावना- रक्षाबन्धन पूज्य श्रद्धास्पद व्यक्तियों अथवा कन्याओं से कराया जाता है। सामूहिक आयोजन में कुछ प्रतिनिधि सबको रक्षासूत्र बाँधें। व्यक्तिगत सम्बन्धों के आधार पर राखी बाँधने का क्रम उस समय चलाने से व्यवस्था गड़बड़ा जाती है, उसे कार्यक्रम के बाद के लिए छोड़ देना चाहिए। रक्षासूत्र बाँधने-बाँधवाने के समय परस्पर पवित्र-दिव्य स्नेह सूत्रों से बाँधने का भाव रखें-

ॐ यदाबध्नाक्षायाणा हिरण्यं शं, शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्मऽआबध्नामि शतशारदाय, आयुष्मांजरदष्टिर्यथासम् ॥३४.५२

॥ वृक्षारोपण ॥

प्रेरणा प्रवाह- वृक्ष परोपकार के प्रतीक हैं, जो बिना कुछ माँगे मनुष्यों-पशुओं को छाया, फल प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त वृक्षों की अधिकता से वायु शुद्ध होती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्षों से वर्षा, प्रदूषण, नियन्त्रण आदि में बड़ी सहायता मिलती है। मानव जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएँ यथा भोजन-वस्त्र-निवास आदि में वृक्षों का ही योगदान अधिक रहता

है, इसलिए वृक्षारोपण, उनका पूजन एवं अधिकाधिक हरियाली पैदा करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है।

क्रिया और भावना- पर्व प्रकरण के प्रतीक रूप में तुलसी की पौध लगाने का न्यूनतम कार्यक्रम अवश्य पूरा किया जाना चाहिए। उसके लिए उचित मात्रा में पौध, पूजावेदी पर या अन्यत्र सजाकर रख लेनी चाहिए। उपस्थित व्यक्तियों में जो अपने यहाँ पौध लगाना चाहें, उन्हें वे दिये जाएँ। सभी उसे हाथ में लेकर मन्त्र के साथ अभिमन्त्रित करें। भावना करें कि प्रकृति में संव्याप्त कल्याणकारी चेतना प्रवाह इस पौध को मंगलमय क्षमता से सम्पन्न बना रहा है। मंच पर प्रतीक पौध गमले में मन्त्रोच्चार के साथ आरोपित करें। शेष व्यक्ति कार्यक्रम समाप्त होने पर उसे वांछित स्थानों में लगाएँ। श्रावणी से भाद्रपद तक वृक्षारोपण अभियान चलाया जाए।

ॐ वनस्पतिरवसृष्टो न पाशैस्त्वन्या.समञ्जच्छमिता न देवः।

इन्द्रस्य हव्यैर्जठरं पृणानः, स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन ॥

- २०.४५

॥ संकल्प ॥

.....नामाहं श्रावणीपर्वणि प्रायश्चित्तविधान-शुद्धान्तःकरणैः
आर्षप्रणाल्याऽनुरूपं तपश्चर्यात्यागयोः स्वजीवने सिद्धान्त-
मंगीकृत्य श्रद्धानिष्ठापूर्वकं तद्धारणस्य संकल्पमहं करिष्ये।
तत्प्रतीकरूपे..... नियमपालनार्थं स्वीकुर्वे।

श्री कृष्ण जन्माष्टमी-गीता जयन्ती

माहात्म्य बोध- युग निर्माण परिवार भारतीय धर्म के अवतारी आत्माओं में राम और कृष्ण को सूर्य-चन्द्र की उपमा देता रहा है। राम का जन्म-दिवस रामनवमी को मनाया जाता है। कृष्ण का दर्शन जन्माष्टमी की अपेक्षा गीता जयन्ती में अधिक प्रखर हुआ है। अर्जुन को भ्रम-जंजाल से छुड़ाकर उन्होंने जिस प्रकार कर्मयोग में प्रवृत्त किया, उसे न केवल महाभारत के घटनाक्रम की दृष्टि से ही, वरन् भारतीय दर्शन में उन दिनों चल रहे अवसाद को तेजी से बदलने की दृष्टि से भी अत्यन्त क्रान्तिकारी कहा जा सकता है। भगवान् कृष्ण के प्रति श्रद्धाभिव्यक्ति तथा उनके जीवन से प्रेरणा प्राप्त करने के लिए सामूहिक आयोजन चाहे कृष्ण जन्माष्टमी (भाद्रपद कृष्ण ८) को किया जाए, चाहे गीता जयन्ती (मार्गशीर्ष शुक्ल ११) पर, विधि-विधान एक से ही रखे जाते हैं। भगवान् कृष्ण के व्यक्तित्व और उनके जीवन दर्शन गीता को भिन्न-भिन्न मानकर नहीं चला जा सकता है। दोनों एक-दूसरे से गुंथे हुए हैं। प्रेरणा उभारने के लिए दोनों का ही उपयोग किया जाना आवश्यक है। भगवान् श्रीकृष्ण ने जीवन में समग्र सन्तुलन को रख दिया है। उन दिनों त्याग-वैराग्य की हवा जोरों से चल रही थी। ईश्वर भक्ति और आत्म कल्याण जैसे महान् लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आमतौर से गृह-त्याग, एकान्तवास, संन्यासधारण, भिक्षाचरण, कायाकष्ट जैसे क्रिया-कलाप ही अपनाये जाने लगे थे। उसी का प्रचलन-परम्परा बन गया था। प्रतिभावान् विभूतियाँ सांसारिक, सामाजिक कर्तव्यों की उपेक्षा करके आत्मलाभ में लगती थीं। फलतः सारा समाज दुर्बल और अस्त-व्यस्त होता चला जा रहा था। इस प्रवाह की दिशा बदले बिना न अध्यात्म का उद्देश्य पूरा होता था और न व्यक्ति का आत्म-कल्याण सम्भव था। भगवान् ने अर्जुन के माध्यम से समस्त मानव जाति को यही सन्देश दिया कि आत्म-कल्याण एवं ईश्वर प्राप्ति के लिए सर्वांग साधना कर्मयोग से ही हो सकती है। भावनाओं को निःस्वार्थ उदात्त परमार्थपरक बनाते हुए लोकमंगल के लिए किए गये सभी कर्म योगसाधना एवं तपश्चर्या हैं। उन्हें अपनाने से आत्म-कल्याण ही नहीं, लोकमंगल का उभयपक्षीय प्रयोजन भी पूरा होता

है। अस्तु, जप-तप तक सीमित न रहकर लोकहित के क्रियाकलाप को पूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने का माध्यम बनाया जाना चाहिए।

गीता में भगवान् ने अर्जुन को अपने विराट् रूप का दर्शन कराते हुए यह बताया कि यह प्रत्यक्ष विश्व ही मेरा साकार रूप है। संसार को सुन्दर, समुन्नत, सुविकसित और सुव्यवस्थित बनाने के लिए किये गये समस्त प्रयत्न ईश्वर-आराधना के श्रेष्ठतम उपचार हैं। यह प्रतिपादन उस एकांगी मान्यता का प्रकारान्तर से खण्डन है, जिसमें अमुक नाम रूप की अनुष्ठानपरक, उपासना को जीवन लक्ष्य की पूर्ति का साधन माना जाता था और परमार्थ प्रेमी उसी में अपना सारा समय-श्रम एवं साधन नियोजित किए रहते थे।

गीता में कर्म करने की एक उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक शैली को उभारा गया है। लक्ष्य ऊँचा रखते हुए भी, शक्ति भर प्रयत्न करते हुए भी-सफलता पूर्णतया निश्चित नहीं रहती। परिस्थितियाँ भी अपना काम करती हैं और कई बार ऐसे परिणाम सामने आ खड़े होते हैं, जिनमें श्रेष्ठ प्रयास भी असफलता के निकट जा पहुँचते हैं। ऐसी घटनाओं से कर्मयोगी को भी बहुत आघात लग सकता है और वह उदास होकर अपना साहस एवं प्रयास ही गवाँ सकता है। भगवान् ने इस स्थिति से बचने के लिए यह मनोवैज्ञानिक मोड़ दिया है कि श्रेष्ठ कर्म करने भर को संतोष, गौरव, उल्लास एवं श्रेय का केन्द्र बिन्दु मान लिया जाए। श्रेष्ठ कर्म किया गया, उसमें पूरी तत्परता बरती गई, इसी को अपनी महानता एवं साहसिकता की सफल अभिव्यंजना मान लिया जाए और कर्मफल को गौण समझा जाए। भौतिक सफलता-असफलता तो बाद में मिलती है, उसका मूल्यांकन तो दूसरे करते हैं, अपना मूल्यांकन और अपनी सफलता-सन्तोष तो उस शुभारम्भ के साथ ही उपलब्ध कर लिया जाए, जिसमें कि श्रेष्ठ कर्म करने की दिशा में वह कदम उठाया गया, जिसे आमतौर से लोभ-मोहग्रस्त व्यक्ति उठाते हुए कतराते हैं।

कर्मयोग दर्शन में सफलता की परिभाषा और सन्तोष का केन्द्र बिन्दु बदला गया है; ताकि अनाचारी लोगों द्वारा अनुचित मार्ग पर चलकर प्राप्त की गयी सफलताओं की ओर किसी का भी जी न ललचाने लगे। अपने सत्प्रयत्नों का भौतिक परिणाम कुछ बढ़-चढ़ कर न मिलने से किसी की

हिम्मत टूटने न लगे। कर्मयोग का दर्शन उस मानसिक असन्तुलन से बचाता है, जो शारीरिक रोगों से भी हजार गुना अधिक कष्टकर और हानिकारक सिद्ध होता है, घटनाक्रम किसी के हाथ में नहीं, प्रिय और अप्रिय परिस्थितियाँ धूप-छाँव की तरह आती रहती हैं। मनुष्यों में भी सर्वथा सज्जनता ही कहाँ? व्यक्तियों तथा घटनाओं द्वारा बार-बार ऐसे व्यवधान प्रस्तुत किये जाते रहते हैं, जो उद्वेग और आवेश उत्पन्न करें। क्रोध, चिन्ता, भय, निराशा, घृणा उत्पन्न करने वाले अवसर आये दिन सामने खड़े रहते हैं, उन्हें बदलने सुधारने के लिए सन्तुलित मस्तिष्क रहने पर कुछ ठीक तरह सोचा और ठीक तरह किया जा सकता है, पर मानसिक दुर्बलता के कारण घटनाक्रम ने पहले मस्तिष्क द्वारा उल्टा ही सोचा अथवा किया जाता है, फलस्वरूप विपत्ति और कई गुनी बढ़ जाती है। दूसरों द्वारा प्रस्तुत व्यवधान की अपेक्षा अपने असन्तुलन की हानि अनेक गुनी होती है। यदि विवेक स्थिर रखा जा सके, तो अपना सन्तुलन तो बनाया ही जा सकता है और संकट उतना सीमित ही बना रह सकता है, जिसके साथ विवेक बुद्धि से जूझा - निपटा जा सके।

मनोविज्ञान शास्त्री जानते हैं कि व्यक्तियों या घटनाओं के कारण मनुष्य को सीमित हानि ही हो सकती है। असीम हानि तो उसकी आवेशग्रस्तता ही उत्पन्न करती है। असफलता अथवा दुर्व्यवहार के कारण मनुष्य का साहस टूट जाता है और वह निराश, हताश होकर अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेता है, अविश्वासी पलायनवादी बन जाते हैं। यदि सफलता मिली, तो वह अहंकारी, उद्धत, अतिवादी, दुस्साहसी बन जाता है और वह हर्षातिरेक स्थिति भी एक तरह का उन्माद उत्पन्न करके अवास्तविकतावादी बना देती है। इस प्रकार सफलताओं की उपलब्धि भी यदि असन्तुलन उत्पन्न करे, तो वह असफलता से भी मँहगी पड़ती है।

स्थितप्रज्ञ की-समत्व योग की चर्चा करते हुए भगवान् कृष्ण ने गीता के माध्यम से मनुष्य की सबसे बड़ी विशेषता और गरिमा उसके मानसिक सन्तुलन की स्थिरता को बताया है। उस आधार पर मनुष्य अपने विवेक को आड़े समय में स्थिर रख सकता है और संकटापन्न लगने वाली स्थिति को खिलाड़ी की-अभिनेता की भावना से निर्वाह करता हुआ, मानसिक आघात से बचा रह सकता है। प्रसन्नता, प्रफुल्लता को अक्षुण्ण बनाये रह सकता है।

ऐसी मानसिक स्थिति वस्तुतः एक बहुत बड़ी उपलब्धि है और उसके दूरगामी परिणाम होते हैं। तीन-चौथाई से अधिक त्रास देने वाले मनोविकारों से छुटकारा मिल जाता है और हलके चित्त वाला व्यक्ति अपने व्यक्तित्व को किस तरह समुन्नत बनाता चला जाता है तथा सफलताओं को वरण करता चला जाता है, यह किसी भी मनःशास्त्र के विद्यार्थी की समझ में सहज ही आ सकता है। व्यक्तियों को प्यार करते हुए भी उनके दोषों को सहन न किया जाए, यह विश्लेषण की अद्भुत शैली है। आमतौर से मित्र के दोष भी सहन किये जाते हैं और शत्रु के गुण भी दम्भ लगते हैं, इस व्यामोह से पक्षपात बढ़ता है और सुधार-परिष्कार की गति अवरुद्ध हो जाती है। गीता ने रोगी से प्यार और रोग पर तलवार बरसाने की परिष्कृत दृष्टि अर्जुन को दी, तभी वह महाभारत का, जीवन-संग्राम का महत्वपूर्ण पात्र बन सका।

ऐसे अगणित संदर्भ गीता के श्लोकों में भरे पड़े हैं। जिनकी प्रकाश किरणें यदि हमारे अन्तःकरण को थोड़ा भी स्पर्शित कर सकें, तो निस्सन्देह हम जीवन रंगमंच के सफल अभिनेता और दिग्भ्रान्त जन समाज का मार्गदर्शन कर सकने वाले ऐतिहासिक लोक-नेता बन सकते हैं। कृष्ण चरित्र में अनेक प्रेरणाप्रद प्रसंग हैं। आरम्भ काल से ही असुर आततायियों से जूझते रहना, सामूहिक श्रमदान की व्यवस्था जुटाकर गोवर्धन पर्वत खड़ा कर देना, गो-संवर्धन की महत्ता को सर्वसाधारण के मन में गहराई तक बिठाने के लिए गान्धीजी द्वारा काते जाने वाले चरखे की तरह उस कार्य में स्वयं निरत रहना, न्याय पक्ष को समर्थन देने के लिए अड़े रहना, सारथी बनने जैसे छोटे समझे जाने वाले कार्य को भी अपनाकर श्रमजीवी वर्ग की गरिमा सुरक्षित रखना, सुदामा के गुरुकुल में आर्थिक कमी पड़ने पर, उन्हें याचना का अवसर दिये बिना ही उसका अर्थाभाव दूर करना, बहेलिये द्वारा पैर में तीर लगने से होने वाली मृत्यु द्वारा यह सिद्ध करना कि इस जन्म में शुद्ध चरित्र रहने पर भी पूर्वकृत पाप फल की अनिवार्यता बनी ही रहती है, उससे कोई बच नहीं सकता। उल्लेखनीय है कि रामावतार द्वारा छिपकर बालि को मारने का दण्ड कृष्णावतार में भोगना पड़ा, बालि बहेलिया बनकर बदला चुकाने आया था। कंस द्वारा व्रज के समस्त दूध-घी को अपने लिए माँगना और उसे बरबाद करना कृष्ण को न भाया और उन्होंने ले जाने वाली

गोपियों का रास्ता रोका, इसकी गान्धीजी के असहयोग आन्दोलन और सत्याग्रह प्रयोग से तुलना कर सकते हैं। नर-नारी का परस्पर मिलन काम विकृति ही पैदा करेगा, इसलिए उसे सहन न किया जाए, जैसी उन दिनों की प्रचलित मान्यता को उन्होंने चुनौती दी और कहा नर-नारी का साथ रहना पवित्र दृष्टिकोण में बाधक नहीं हो सकता। दोनों को पृथक् प्रतिबन्धित करना हर दृष्टि से अहितकर है। मनुष्य मात्र मिलकर रहें। नर-नारी साथ-साथ हैंसते-खेलते जीवन निर्वाह करें। दृष्टिकोण की पवित्रता तो भावनाओं पर निर्भर है, सहचरत्व उसमें बाधक नहीं होता, यह शिक्षण उन्होंने गोप-गोपियों की सम्मिलित रासलीला द्वारा दिया है।

जयद्रथ-वध के समय सूर्य प्रकाश में नकलीपन उत्पन्न करना, कर्ण के शस्त्र विहीन होने पर अर्जुन को आक्रमण के लिए कहना- एक पत्नी व्रत को अनिवार्य न मानना, द्रोपदी को पाँच पति रखने और अपनी कई पत्नियों का एक अभिनव प्रयोग करना, जैसे कितने ही प्रसंग ऐसे हैं, जिन्हें सामान्य लोक परम्परा से ऊँचे उठकर इसी दृष्टि से विचार करना पड़ेगा कि उच्च आदर्शों की रक्षा के लिए प्रचलित आचार संहिता में हेर-फेर भी किया जा सकता है। गुप्तचर विभाग को छल और झूठ के आधार पर ही अपनी राष्ट्र सेवा करने का अवसर मिलता है। सैनिक, योद्धा हिंसा का प्रयोग करते हैं, उन्हें सामान्य दृष्टि से हेय कहा जा सकता है, पर सूक्ष्म विवेचना इसकी भी आवश्यकता अनुभव करती है। दुष्टता से निपटने के लिए आपत्ति धर्म के आधार पर अथवा अपरिहार्य आवश्यकता उत्पन्न हो जाने पर, वैसे व्यतिक्रम भी सहन किये जाने चाहिए, कृष्ण के कुछ चरित्र इसी मान्यता का समर्थन करते हैं। उनकी माखनचोरी-लीला आदि की क्रान्तिकारियों की डकैती से तुलना की जा सकती है। विश्वामित्र ऋषि द्वारा आपत्तिकाल में कुत्ते का मांस खाकर अपनी प्राण रक्षा करने-जैसे प्रसंगों को भी इसी श्रेणी में लिया जा सकता है।

जो हो, हम उन्हें दार्शनिक गुत्थियों पर नये ढंग से सोचने का एक तरीका भी समझें और उन पर दूसरे लोगों को विचार करने दें। जन-संख्या निरोध में एक उपाय द्रोपदी वाला भी प्रचलित है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूमि की

कमी और परिवार विस्तार की गुंजायश न देखकर वहाँ एक भाई का विवाह होता है और शेष सह-पति रहते हैं।

जर्मनी में द्वितीय महायुद्ध के समय बहुशः लोग मर-खप गये थे। बढ़ी हुई नारी संख्या की अस्त-व्यस्तता रोकने के लिए पुरुषों को कई पत्नियाँ रखने का कानूनी अधिकार दिया गया था। ऐसे ही विशेष परिस्थितियों में विशेष प्रथाएँ-विशेष रूप से बदली जा सकती हैं। इसी का समर्थन भगवान् कृष्ण ने किया है। उन्होंने मान्यताओं को पत्थर की लकीर न बनाये रखकर परिस्थितियों के अनुरूप उन पर स्वतन्त्र चिन्तन की गुंजायश रखने भर का पथ - प्रशस्त किया है।

भगवान् श्री कृष्ण हर दृष्टि से महान् थे। उनके चरित्र में से जितना अंश सर्वोपयोगी हो, उसे हम सब अनुकरणीय मानें। विशेष परिस्थितियों में कुछ विशेष ढंग से सोचने के लिए जो किया या कहा है, उसे विशेषज्ञों के लिए छोड़ देना पड़ता है। जन सामान्य को उसमें नही उलझना चाहिए।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

श्री कृष्ण जन्माष्टमी- गीता जयन्ती पर सामान्य पर्वों जैसी व्यवस्था से ही काम चल जाता है। पूजन मंच पर भगवान् कृष्ण का, सखाओं के प्रतीक अर्जुन या ग्वालबालों का चित्र, गीता की पुस्तक आदि सजाकर रखें। आवाहन पूजन के लिए प्रतीक स्थापना आवश्यक है।

पर्व पूजन का समय ऐसा रखें कि जिसमें सबको पहुँचने में कठिनाई न हो। जन्म समारोह के नाम पर रात्रि के १२ बजे आयोजन की बात न सोचें। पर्व के सन्दर्भ में भगवान् कृष्ण का अभिवादन-पूजन करने का भाव रखें। श्रद्धा और उपयोगिता दोनों दृष्टियों से यह भाव उपयुक्त रहता है।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

प्रारम्भ में प्रेरणा संचार के लिए गीत एवं संक्षिप्त उद्बोधन करके पूजन क्रम आरम्भ करें। षट्कर्म से रक्षाविधान तक का क्रम अन्य पर्वों की तरह चले। विशेष पूजन में भगवान् कृष्ण का आवाहन, सखा आवाहन एवं गीता आवाहन करें। तीनों का संयुक्त पूजन षोडशोपचार से करें। भगवान्

कृष्ण को नैवेद्य के रूप में विशेष रूप से गो-द्रव्य चढ़ाये जाएँ। अन्त में यज्ञ-दीपयज्ञ, समापन, देव दक्षिणा संकल्प, संगीत आदि का क्रम रहे।

॥ विशेष पूजन ॥

प्रेरणा प्रवाह- पर्व पूजन में भगवान् कृष्ण, उनके सखा एवं गीता का आवाहन-पूजन किया जाता है। विशेष नैवेद्य में गो-द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। इन उपचारों से सम्बद्ध प्रेरणा, उपचार के पूर्व उभारी जानी चाहिए।

भगवान् कृष्ण के संदर्भ में भूमिका में बहुत कुछ संकेत किये जा चुके हैं। उनमें से कुछ आवाहन के पूर्व उभारे जा सकते हैं। सखा सहयोग-सहकारिता के प्रतीक हैं। यह ऐसी वृत्ति है, जिसकी आवश्यकता भिन्न-भिन्न सामाजिक व्यवस्थाओं के समर्थक भी एक मत से स्वीकार करते हैं। उनके जीवन में बाल्यकाल से लेकर अन्त तक सखाओं का- सहकारिता का प्रवाह बड़ी स्पष्टता से उभरा है। सखा आवाहन के साथ उसे उभारें।

गीता को उनका शाश्वत कलेवर कह सकते हैं। ज्ञान को जन सुलभ और सर्वोपयोगी बनाने का उसमें अपने ही ढंग से प्रयास किया गया है। व्यक्ति का जीवन-दर्शन ही उसका असली स्वरूप है, इस तत्त्व को गीता पूजन के साथ उभारें। गो-द्रव्य कृष्ण को विशेष प्रिय थे। उन्होंने गो-संवर्धन अभियान, चर्खा और सर्वोदय के ढंग से चलाया था। भारत में गोवंश व गो-द्रव्यों के उपयोग का महत्त्व हर स्तर पर सिद्ध किया जा चुका है; परन्तु संकीर्णतावश उसका महत्त्व जन-जीवन में उतर नहीं रहा है। गो-द्रव्य के द्वारा उसे व्यापक बनाने की प्रेरणा उभारना, प्रार्थना करना अभीष्ट है।

॥ श्रीकृष्णावाहन ॥

ॐ देवकीनन्दनाय विद्महे, वासुदेवाय धीमहि।

तन्नः कृष्णः प्रचोदयात् ॥

-कृ० गा०

ॐ वंशी विभूषितकरात्रवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात्।

पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्,

कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥ ॐ श्रीकृष्णाय नमः।

॥ श्रीकृष्ण-सखा आवाहन ॥

ॐ सखायः सं वः सम्यज्वमिष १३ स्तोमं चाग्नये।

वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नञ्चे सहस्वते ॥ - १५.२९

ॐ श्रीकृष्ण-सखिभ्यो नमः।

॥ गीता आवाहन ॥

ॐ गीता सुगीता कर्तव्या, किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।

या स्वयं पद्मनाभस्य, मुखपदमाद्विनिःसृता ॥

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि, गीता मे चोत्तमं गृहम्।

गीताज्ञानमुपाश्रित्य, त्रींल्लोकान्पालयाम्यहम् ॥

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपालनन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

ॐ श्रीगीतायै नमः।

तत्पश्चात् आवाहन करके पुरुषसूक्त से षोडशोपचारपूजन करें।

॥ गोद्रव्य-अर्पण ॥

मन्त्र के साथ पंचामृत भगवान् कृष्ण को अर्पित करें।

ॐ माता रुद्राणां दुहिता वसूनां, स्वसादित्यानाममृतस्य
नाभिः। प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय, मा गामनागामदितिं
वधिष्ट ॥

- ऋ० ८.१०.१५

॥ संकल्प ॥

.....नामाहं कृष्णजन्मोत्सवे / गीताजयन्तीपर्वणि स्वशक्ति-
अनुरूपं न्यायपक्षवरणं तत्समर्थनं च करिष्ये। तत्प्रतीकरूपेण
.....नियमपालनार्थं संकल्पयिष्ये।

* * *

॥ पितृ अमावस्या ॥

यह पर्व आश्विन कृष्णपक्ष (पितृ पक्ष) के अन्त में अमावस्या को होता है। श्राद्ध संस्कार के आधार पर इसका आयोजन किया जाता है। प्रारम्भ में सामान्य प्रकरण से षट्कर्म आदि से रक्षाविधान तक कराते हैं, पुनः यम आवाहन, पितृ आवाहन, तर्पण, पिण्डदान, श्राद्ध संकल्प आदि समय और परिस्थितियों के अनुसार विवेकपूर्ण ढंग से करा लेना चाहिए। उपर्युक्त प्रकरण इस पुस्तक के पृष्ठ २७४ से पृष्ठ २९७ के मध्य आ चुका है। विसर्जन से पूर्व पितृ मोक्ष (उत्क्रण भाव) का संकल्प लेना चाहिए। संकल्प दुहराने का क्रम नीचे दिया जा रहा है।

॥ संकल्प ॥

.....नामाहं पितृमोक्षपर्वणि परमेश्वर-प्रकृति-पितृ-परिजन आश्रित इतर-जनानां कृतमुपकाराणाभृणाद् आनृण्यार्थं प्रबलपुरुषार्थम् अहं करिष्ये।

* * *

॥ विजयादशमी ॥

माहात्म्य बोध- दशहरा शौर्य का, शक्ति का, स्वास्थ्य का पर्व है। इस दिन हम अपनी भौतिक शक्ति, मुख्यतया शस्त्र और स्वास्थ्य बल का लेखा-जोखा करते हैं। अपनी शक्तियों को विकसित एवं सामर्थ्ययुक्त बनाने के लिए दशहरा पर्व प्रेरणा देता है। वैसे इस पर्व के साथ अनेकों कथाएँ जुड़ी हुई हैं; लेकिन मुख्यतः दुर्गा, जो शक्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं, इसका इतिहास अधिक महत्त्व रखता है। कथा है कि ब्रह्माजी ने असुरों का सामना करने के लिए सभी देवताओं की थोड़ी-थोड़ी शक्ति संगृहीत करके दुर्गा अर्थात् संघशक्ति का निर्माण किया और उसके बल पर शुम्भ-निशुम्भ,

मधुकैटभ, महिषासुर आदि राक्षसों का अन्त हुआ। दुर्गा की अष्टभुजा का मतलब आठ प्रकार की शक्तियों से है। शरीर-बल, विद्या-बल, चातुर्य-बल, धन- बल, शस्त्र-बल, शौर्यबल, मनोबल और धर्म-बल इन आठ प्रकार की शक्तियों का सामूहिक नाम ही दुर्गा है। दुर्गा ने इन्हीं के सहारे बलवान् राक्षसों पर विजय पायी थी।

समाज को हानि पहुँचाने वाली आसुरी शक्तियों का सामूहिक और दुष्ट व्यक्तियों का प्रतिरोध करने के लिए हमें संगठन शक्ति के साथ-साथ उक्त शक्तियों का अर्जन भी करना चाहिए। उक्त आठ शक्तियों से सम्पन्न समाज ही दुष्टताओं का अन्त कर सकता है, समाज द्रोहियों को विनष्ट कर सकता है, दुराचारी षड्यन्त्रकारियों का मुकाबला कर सकता है।

दशहरा का पर्व इन शक्तियों का अर्जन करने तथा शक्ति की उपासना करने का पर्व है। स्मरण रहे संसार में कमजोर, अशक्त व्यक्ति ही पाप-बुराई-अन्याय को प्रोत्साहन देते हैं। जहाँ इस तरह के व्यक्ति अधिक होंगे, वह समाज अस्त-व्यस्त एवं नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा। वहाँ असुरता, अशान्ति, अन्याय का बोलबाला होगा ही।

दशहरे पर भगवान् राम द्वारा रावण पर विजय की कथा भी सर्वविदित है। व्यक्ति के अन्दर परिवार एवं समाज में असुर प्रवृत्तियों की वृद्धि ही अनर्थ पैदा करती है। जिन कमजोरियों के कारण उन पर काबू पाने में असफलता मिलती है, उन्हें शक्ति साधना द्वारा समाप्त करने के लिए योजना बनाने-संकल्प प्रखर करने तथा तदनुसार क्रम अपनाने की प्रेरणा लेकर यह पर्व आता है। इसका उपयोग पूरी तत्परता एवं समझदारी से किया जाना चाहिए।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

यह पर्व आश्विन नवरात्रि से जुड़ा रहता है। नवरात्रि साधना का महत्त्व एवं सामूहिक साधना क्रम का विवरण चैत्र नवरात्रि प्रकरण में दिया जा चुका है। नौ दिन का सामूहिक साधना का अनुष्ठान जहाँ जिस स्तर पर भी हो, आयोजित किया जाना चाहिए। नवमी को बहुधा पूर्णाहुति के लिए सभी साधक एकत्रित होते हैं। दशहरे के दिन प्रातःकाल पूर्णाहुति रखकर नवरात्रि साधना की पूर्णाहुति एवं दशहरा पर्व का संयुक्त रूप भी दिया जा सकता है। यदि साधना पूर्णाहुति नवमी को दशहरे से एक दिन पूर्व कर ली

गई, तो स्थानीय सुविधा के अनुसार दशहरा पर्व पूजन दशमी के दिन प्रातःकाल या सायंकाल कभी भी किया जा सकता है।

देवपूजन मंच पर अष्टभुजी माँ दुर्गा का चित्र स्थापित किया जाना चाहिए। शस्त्र पूजन के लिए कोई शस्त्र चौकी पर सजाकर रखना चाहिए। पूजन सामग्री के साथ पुष्प, अक्षत, चन्दन आदि उपस्थिति के अनुरूप पर्याप्त मात्रा में रखना चाहिए।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

पर्व के अनुरूप प्रेरणा उभारने के लिए उपयुक्त संगीत एवं संक्षिप्त भूमिका के बाद पूजन क्रम प्रारम्भ किया जाता है। षट्कर्म से रक्षाविधान तक सामान्य क्रम यथा- स्थिति चलाएँ। विशेषपूजन नीचे लिखे अनुसार करें।

॥ दुर्गा-आवाहन-पूजन ॥

दुर्गा देववृत्तियों का नाम है। भावना करें कि यह देवानुकूल विशेषताएँ हममें, जन-जन में जाएँ। उनका संयुक्त उपयोग करने की क्षमता मिले। इस भावना के साथ सभी हाथ जोड़कर यह मन्त्र बोलें।

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।

देवाभागं यथापूर्वं, सज्जानाना उपासते॥

इसके बाद माता दुर्गा का विशेष आवाहन करें। ऋ० १०.१११.२

॥ दुर्गा आवाहन ॥

ॐ गिरिजायै विद्महे, शिवप्रियायै धीमहि।

तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥

- दु० गा०

ॐ नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे,

नमस्ते जगद् व्यापिके विश्वरूपे।

नमस्ते जगद्वन्द्य पादारविन्दे,

नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥

ॐ श्रीदुर्गायै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

तत्पश्चात् पुरुष सूक्त पृष्ठ११ से षोडशोपचार पूजन करें।

॥ शस्त्र पूजा ॥

प्रेरणा प्रवाह-आसुरी शक्तियों को नियन्त्रित करने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें शस्त्र कहते हैं। उनका उपयोग रक्षार्थ करना ही पड़ता है; परन्तु एक बार शस्त्र के उपयोग का अभ्यास होते ही उसका उपयोग स्वार्थ पूर्ति के लिए भी किया जाने लगता है। शस्त्र पूजा के साथ यह प्रेरणा जुड़ी है कि शस्त्र का ऐसा उपयोग हो, जो अभिनन्दनीय हो। शस्त्रों में माँ दुर्गा वह संस्कार पैदा करें, जो उनको सदुद्देश्यों से बहकने न दे।

चौकी पर शस्त्र रखकर मन्त्र सहित उस पर पुष्प चढ़ाएँ। विशेष शस्त्र न हो, तो लाठी, चाकू आदि से काम चला लेना चाहिए।

ॐ शत्रू षाण्णीषाडभिमातिषाहो, गवेषणः सहमान उद्भिन्त।
वाग्वीव मन्त्रं प्र भरस्व वाचं, सांग्रामजित्यायेषमुद्देह॥

- अथर्व० ५.२०.११

इसके बाद यज्ञ आदि समापन के उपचार यथास्थिति किये जाएँ।

॥ संकल्प ॥

....नामाहं दुर्गापूजनपर्वणि समाजे स्वान्तःकरणे च सद्वृत्तीनां
समारोपणे तदभिनन्दन-सहकारयोश्च संकल्पम् अहं करिष्ये।

॥ दीपावली पर्व ॥

दीपावली लक्ष्मी का पर्व माना गया है। लक्ष्मी से तात्पर्य है-अर्थ-धन। यह अर्थ का पर्व है। दीपावली पर हम अपनी आर्थिक स्थिति का लेखा-जोखा लेते हैं, उसका चिट्ठा बनाते हैं, लाभ-हानि पर विचार करते हैं, लेकिन केवल हिसाब-किताब तक ही यह पर्व सीमित नहीं है, वरन् इस अवसर पर आर्थिक क्षेत्र में अपनी बुराइयों को छोड़कर अच्छाइयाँ ग्रहण करने का पर्व है। अर्थ अर्थात् लक्ष्मी जीवन साधना का, विकास की ओर बढ़ने का सहारा है, लेकिन ठीक उसी तरह जैसे माँ का दूध। हम लक्ष्मी को माँ समझ कर उसे अपने जीवन को विकसित-सामर्थ्यवान् बनाने के लिए

उपयोग करें, न कि भोग-विलास तथा ऐशो-आराम के लिए। इसलिए माँ लक्ष्मी के रूप में अर्थ की पूजा करना दीपावली का एक विशेष कार्यक्रम है। आवश्यकतानुसार खर्च करना, उपयोगी कार्यों में लगाना, नीति और श्रम तथा न्याय से धनोपार्जन करना, बजट बनाकर उसकी क्षमता के अनुसार खर्च करना, आर्थिक क्षेत्र में सन्तुलन बनाये रखना, ये दीपावली पर्व के सन्देश हैं।

गणेश, दीप पूजन और गो-द्रव्य पूजन इस पर्व की विशेषताएँ हैं। इनसे तात्पर्य यह है कि धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का अर्थात् अर्थ का सदबुद्धि, ज्ञान, प्रकाश और पारमार्थिक कार्यों से विरोध नहीं होना चाहिए, वरन् अर्थ का उपयोग इनके लिए हो और अर्थोपार्जन भी इन्हीं से प्रेरित हो।

लक्ष्मी पूजन प्रारम्भ करने से पूर्व पूजा वेदी पर लक्ष्मी-गणेश के चित्र या मूर्ति, बहीखाता, कलम-दवात आदि भली प्रकार सजाकर रखने चाहिए तथा आवश्यक पूजा की सामग्री तैयार कर लेनी चाहिए।

यों तो सभी पर्व सामूहिक रूप से मनाये जाते हैं; परन्तु पूजन के लिए किसी प्रतिनिधि को पूजा चौकी के पास बिठाना पड़ता है, इसी परिप्रेक्ष्य में पास बिठाये हुए प्रतिनिधि को षट्कर्म कराया जाए, अन्य उपस्थित परिजनों का समाहिक सिचन से भी काम चलाया जा सकता है। फिर सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि क्रम सामान्य प्रकरण से पूरे कर लिये जाएँ। तत्पश्चात् श्रीगणेश एवं लक्ष्मी के आवाहन - पूजन प्रतिनिधि से कराए जाएँ।

॥ गणेश आवाहन ॥

गणेशजी को विघ्ननाशक और बुद्धि-विवेक का देवता माना गया है। दीपावली पर गणेश पूजन से तात्पर्य यह है कि हम धन को खर्च करने और कमाने में बुद्धि-विवेक से काम लें। अविवेकी ढंग से बुद्धिहीनता के साथ उसे गलत ढंग से न तो अर्जन करें, न खर्च ही करें।

ॐ एकदन्ताय विद्महे, वक्रतुण्डाय धीमहि।

तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ - ग० गा०

ॐ विघ्नेश्वराय वरदाय सुरप्रियाय,

लम्बोदराय सकलाय जगद्धिताय।

नागाननाय श्रुतियज्ञविभूषिताय,
गौरीसुताय गणनाथ ! नमो नमस्ते ॥

ॐ श्री गणेशाय नमः।

॥ लक्ष्मी आवाहन ॥

लक्ष्मी को विष्णु भगवान् की पत्नी अर्थात् जगन्माता माना गया है। जीवन को भली प्रकार विकसित होने में अर्थ प्रधान साधनों की महती आवश्यकता होती है, लेकिन स्मरण रहे हम इनका उपयोग माता की तरह ही करें। जिस तरह माता का पयपान हम जीवन धारण करने एवं भूख बुझाने के लिए करते हैं, उसी तरह धन आदि साधनों का सदुपयोग करें।

इसी तथ्य को हृदयंगम करने के लिए दीपावली पर महालक्ष्मी का पूजन किया जाता है। निम्न मन्त्र से माँ लक्ष्मी का भावभरा आवाहन करें-

ॐ महालक्ष्म्यै विद्महे, विष्णुप्रियायै धीमहि।

तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥ -- ल० गा०

ॐ आद्यन्तरहिते देवि, आद्यशक्ति महेश्वरि।

योगजे योगसम्भते, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

स्थूलसूक्ष्ममहारीद्रि, महाशक्तिमहोदरे।

महापापहरे देवि, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

पद्मासनस्थिते देवि, परब्रह्मस्वरूपिणि।

परमेशि जगन्मातः, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

श्वेताम्बरधरे देवि, नानालंकारभूषिते।

जगत्स्थिते जगन्मातः, महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥

ॐ श्री लक्ष्म्यै नमः ॥

पुरुष सूक्त से सभी आवाहित देवताओं का षोडशोपचार पूजन करें।

॥ बहीखाते एवं कलम दवात का पूजन ॥

बही, बजट बनाने एवं हिसाब रखने का साधन है, आय-व्यय को बताने वाली है। इसलिए दीपावली पर बही का पूजन किया जाता है। कलम-दवात भी हिसाब लिखने के काम में आते हैं। लक्ष्मी के

अर्थात् धन के हिसाब-किताब में इनका उपयोग होने से इन सब की भी पूजा की जाती है। नये वर्ष के लिए प्रयुक्त की जाने वाली बही तथा कलम-दवात का पूजन विधिवत् निम्न मन्त्रों के साथ करें। पूजन करने के समय उन्हें अक्षत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप आदि समर्पित करके प्रणाम करें।

॥ बहीखाता पूजन ॥

ॐ प्रसवे तऽ उदीरते तिस्रो वाचो मखस्युवः।

यदव्य एषि सानवि ॥

-- ऋ० ९.५०.२

॥ कलम-दवात पूजन ॥

ॐ शिशुर्न जातोऽव चक्रदद्वने स्वर्शद्वाज्यरुषः सिषासति।

दिवो रेतसा सचते पयोवृधा तमीमहे सुमती शर्म सप्रथः ॥

- ऋ० ९.७४.१

॥ दीपदान ॥

दीप, ज्ञान के-प्रकाश के प्रतीक हैं। ज्ञान और प्रकाश के वातावरण में ही लक्ष्मी बढ़ती है, फलती-फूलती है। अज्ञान और अन्धकार में वह नष्ट हो जाती है, इसलिए प्रकाश और ज्ञान के प्रतीक साधन दीप जलाये जाते हैं।

एक थाल में कम से कम ५ या ११ घृत-दीप जलाकर उसका निम्न मन्त्र से विधिवत् पूजन करें। तत्पश्चात् दीपावली के रूप में जितने चाहें, उतने दीप तेल से जलाकर विभिन्न स्थानों पर रखें।

ॐ अग्निर्ज्योतिर् ज्योतिरग्निः स्वाहा। सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा। अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥- ३.९

॥ संकल्प ॥

सभी परिजनों से संकल्प करवाया जाए। वही संकल्प के पुष्पाक्षत पुष्पांजलि मन्त्र बोलते हुए, पूजा चौकी पर चढ़ाते हुए, क्रम समाप्त करें।

.....नामाहं महालक्ष्मीपूजनपर्वणि अर्थशक्तिं महालक्ष्मीप्रतीकं विज्ञाय अपव्ययादिदोषं दूरीकरणस्य संकल्पमहं करिष्ये।

॥ वसंतपंचमी ॥

माहात्म्य बोध- वसन्त पंचमी शिक्षा, साक्षरता, विद्या और विनय का पर्व है। कला, विविध गुण, विद्या को, साधना को बढ़ाने, उन्हें प्रोत्साहित करने का पर्व है-वसन्त पंचमी। मनुष्यों में सांसारिक, व्यक्तिगत जीवन का सौष्ठव, सौन्दर्य, मधुरता उसकी सुव्यवस्था यह सब विद्या, शिक्षा तथा गुणों के ऊपर ही निर्भर करते हैं। अशिक्षित, गुणहीन, बलहीन व्यक्ति को हमारे यहाँ पशुतुल्य माना गया है। साहित्य संगीत कलाविहीन, साक्षात् पशुःपुच्छविषाणहीनः। इसलिए हम अपने जीवन को इस पशुता से ऊपर उठाकर विद्या-सम्पन्न, गुण-सम्पन्न, गुणवान् बनाएँ, वसन्त पंचमी इसी की प्रेरणा का त्र्योहार है।

भगवती सरस्वती के जन्म दिन पर उनके अनुग्रह के लिए कृतज्ञता भरा अभिनन्दन करें- उनकी अनुकम्पा का वरदान प्राप्त होने की पुण्यतिथि पर हर्षोल्लास मनाएँ, यह उचित ही है। दिव्य शक्तियों को मानवी आकृति में चित्रित करके ही उनके प्रति भावनाओं की अभिव्यक्ति सम्भव है। भावोद्दीपन मनुष्य की निज की महती आवश्यकता है। शक्तियाँ सूक्ष्म, निराकार होने से उनकी महत्ता तो समझी जा सकती है, शरीर और मस्तिष्क द्वारा उनसे लाभ उठाया जा सकता है, पर अन्तःकरण की मानस चेतना जगाने के लिए दिव्यतत्त्वों को भी मानवी आकृति में संवेदनायुक्त मनःस्थिति में मानना और प्रतिष्ठापित करना पड़ता है। इसी चेतना विज्ञान को ध्यान में रखते हुए भारतीय तत्त्ववेत्ताओं ने प्रत्येक दिव्य शक्ति को मानुषी आकृति और भाव गरिमा में सँजोया है। इनकी पूजा, अर्चना, वन्दना, धारणा हमारी अपनी चेतना को उसी प्रतिष्ठापित देव गरिमा के समतुल्य उठा देती है, साधना विज्ञान का सारा ढाँचा इसी आधार पर खड़ा है।

भगवती सरस्वती की प्रतिमा, मूर्ति अथवा तस्वीर के आगे पूजा-अर्चा की प्रक्रिया की जाए, इसका सीधा तात्पर्य यह है कि शिक्षा की महत्ता को स्वीकार, शिरोधार्य किया जाए, उनको मस्तक झुकाया जाए अर्थात् मस्तक में उनके लिए स्थान दिया जाए। अपनी आज की ज्ञान सीमा जितनी है, उसे और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न किया जाए। वास्तव में संग्रह करने और बढ़ाने

योग्य सम्पदा धन नहीं, ज्ञान है। लक्ष्मी नहीं, विद्या का अधिक संग्रह संपादन किया जाना चाहिए। परीक्षा के लिए पढ़ना भी अच्छा है। विदेशों में श्रमजीवी, व्यापारी, शिल्पी तथा दूसरे लोग रात्रि विद्यालयों में निरन्तर पढ़ते रहते हैं तथा बचपन में स्वल्प शिक्षा रहते हुए भी धीरे-धीरे ज्ञान सम्पदा बढ़ाते चलते हैं और जीवन के अन्त तक अपनी रुचि के विषय में निष्णात बन जाते हैं, ऊँची से ऊँची उपाधि प्राप्त कर लेते हैं।

अपने देश में यह समझा जाता है कि विद्या नौकरी करने के लिए प्राप्त की जानी चाहिए- यह विचार बहुत ही ओछा और निकृष्ट है। उसमें विद्या की हेटी-खोटी समझकर उसका अपमान करने की धृष्टता छिपी हुई है। विद्या मनुष्य के-मस्तिष्क के-व्यक्तित्व के गौरव के निखार एवं विकास के लिए है। पेट के लिए अन्न की तरह, वह मस्तिष्क के पोषण में सहायक है। हमें पेट भरने की तरह मानसिक भूख बुझाने के लिए दैनिक जीवन में अध्ययन के लिए भी स्थान रखना चाहिए। जिन्हें सरकारी पाठ्यक्रम परीक्षा स्तर की पढ़ाई पढ़नी हो, वे रात्रि विद्यालयों-ट्यूटोरियल स्कूलों की व्यवस्था और उनके आधार पर पढ़ाई जारी रखें, जिन्हें किन्हीं विशेष विषयों में रुचि हो, उनका साहित्य खरीद कर अथवा पुस्तकालयों द्वारा प्राप्त कर अपनी ज्ञान गरिमा बढ़ाएँ। भगवती सरस्वती के पूजन-वन्दन के साथ-साथ इस स्तर की प्रेरणा ग्रहण करने और उस दिशा में कुछ कदम उठाने का साहस करना चाहिए। स्वाध्याय हमारे दैनिक जीवन का अंग बन जाए। ज्ञान की गरिमा को हम समझने लग जाएँ और उसके लिए मन में तीव्र उत्कण्ठा जाग पड़े, तो समझना चाहिए कि सरस्वती पूजन की प्रक्रिया ने अन्तःकरण तक प्रवेश पा लिया।

अपने देश में शिक्षितों की संख्या २३ प्रतिशत और अशिक्षितों की ७७ प्रतिशत है। यह अभाव अन्न की भुखमरी से भी अधिक भयावह है। यदि मनुष्य शरीर मात्र बनकर जाए, उसकी बौद्धिक परिधि चौड़ी न हो सकी, तो उसे पशु जीवन ही कहा जाएगा। अपने देश की तीन चौथाई जनसंख्या इसी स्तर का जीवनयापन करती है। अन्न का अकाल जब पड़ता है, तब सरकारी-गैर सरकारी स्तर पर दयालु, दानी और लोकसेवियों द्वारा उस कष्ट का निवारण करने के लिए कितने ही उपाय किये जाते हैं, पर अत्यन्त खेद

की बात है कि इस बौद्धिक भुखमरी की ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। स्कूली बच्चों की पढ़ाई भर का थोड़ा-सा प्रबन्ध सरकार कर रही है, बाकी प्रौढ़ पुरुष, प्रौढ़ महिलाएँ उसी निरक्षरता की व्यथा से ग्रसित हैं। छोटे देहातों में तो लड़कों के लिए भी पढ़ाई का प्रबन्ध नहीं, पिछड़े वर्ग के लोग पढ़ाई की आवश्यकता ही नहीं समझते। जिनके पास गुजारे को है, वे कहते हैं कि हमें अपने बच्चों से नौकरी थोड़ ही करानी है, हम क्यों पढ़ाएँ? लड़कियों का पढ़ना तो अभी भी बेकार समझा जाता है। इस स्थिति का अन्त किया जाना चाहिए। शिक्षितों को विद्या ऋण चुकाने के लिए अपने समीपवर्ती अशिक्षितों को पढ़ाने का संकल्प लेना चाहिए और एक नियत संख्या में उन्हें शिक्षित बनाकर ही रहना चाहिए।

ऊँची पढ़ाई के लिए रात्रि विद्यालय, प्रौढ़ पुरुषों के लिए रात्रि पाठशालाएँ, प्रौढ़ महिलाओं के लिए अपराह्न पाठशालाएँ पढ़ने योग्य बच्चों को स्कूल भिजवाने के लिए उनके अभिभावकों से आग्रह, कन्या शिक्षा के लिए वातावरण बनाना तथा व्यवस्था करना, नये स्कूल खुलवाने के लिए सरकार से आग्रह एवं जनता से सहयोग एकत्रित करना, चालू विद्यालयों का विकास-विस्तार का प्रबन्ध करना, पुस्तकालयों की स्थापना, चल पुस्तकालयों का प्रचलन छात्रों को पुस्तकें उधार देने वाले पुस्तक बैंक आदि कितने ही शिक्षा प्रसार सम्बन्धी ऐसे कार्यक्रम हैं, जिन्हें पूरे उत्साह के साथ सर्वत्र विकसित किया जाना चाहिए। वसन्त पर्व पर सरस्वती पूजन की यह प्रक्रिया उचित ही होगी।

भगवती सरस्वती के हाथ में वीणा है, उनका वाहन मयूर है, मयूर अर्थात् मधुर भाषी। हमें सरस्वती का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उनका वाहन मयूर बनना चाहिए। मीठा, नम्र, विनीत, सज्जनता, शिष्टता और आत्मीयतायुक्त संभाषण हर किसी से करना चाहिए। जीभ को कड़ुआ, धृष्ट, अशिष्ट बोलने की आदत कदापि न पड़ने दें। छोटों को भी तू नहीं, आप कहकर बोलें, कम से कम तुम तो कहें ही। हर किसी के सम्मान की रक्षा करें। उसे गौरवान्वित करें, सम्मान भरा व्यवहार करें; ताकि किसी को आत्महीनता की ग्रन्थि का शिकार बनाने का पाप अपने सिर पर न चढ़े।

प्रकृति ने मोर को कलात्मक तथा सुसज्जित बनाया है। हमें भी अपनी

अभिरुचि परिष्कृत बनानी चाहिए, हम प्रेमी बनें, सौन्दर्य, स्वच्छता और सुसज्जनता का शालीनतायुक्त आकर्षण अपने प्रत्येक उपकरण एवं क्रियाकलाप में नियोजित रखें, तभी भगवती सरस्वती हमें अपना वाहन, पार्षद, प्रिय पात्र मानेंगी। हाथ में वीणा, अर्थात्-संगीत-गायन जैसी भावोत्तेजक प्रक्रिया को अपने प्रसुप्त अन्तःकरण में सजगता भरने के लिए प्रयुक्त करना है। हम कला प्रेमी बनें, कला पारखी बनें, कला के पुजारी और संरक्षक भी। माता की तरह उसका सात्त्विक एवं पोषक पय पान करें, उच्च भावनाओं के जागरण में उसे सँजोएँ। जो अनाचारी कला के साथ व्यभिचार करने पर तुले हुए हों, पशु प्रवृत्ति भड़काने और कामुकता, अश्लीलता एवं कुरुचि उत्पन्न करने में लगे हों, उनका न केवल असहयोग-विरोध ही करें, वरन् विरोध-भर्त्सना के अतिरिक्त उन्हें असफल बनाने में भी कुछ कसर उठा न रखें।

सरस्वती के अवतरण पर्व पर प्रकृति खिलखिला पड़ती है, हँसी और मुस्कान के फूल खिल पड़ते हैं। उल्लास, उत्साह और प्रकृति के अभिनव सृजन के प्रतीक नवीन पल्लव प्रत्येक वृक्ष पर परिलक्षित होते हैं। मनुष्य में भी जब ज्ञान का, शिक्षा का प्रवेश होता है- सरस्वती का अनुग्रह अवतरित होता है, तो स्वभाव में, दृष्टिकोण में, क्रिया कलाप में वसन्त ही बिखरा दीखता है। हल्की-फुल्की, चिता और उद्वेगों से रहित खेल जैसी जिन्दगी जीने की आदत पड़ जाती है। हर काम की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अनुभव करने पर भी मन पर बोझ किसी भली-बुरी घटना का न पड़ने देना-यही है हल्की-फुल्की जिन्दगी, पुष्पों की तरह अपने दाँत हर समय खिलते रहे, मुस्कान चेहरे पर अठखेलियाँ करती रहे। चित्त हल्का रखना, आशा और उत्साह से भरे रहना, उमंगें उठने देना, उज्ज्वल भविष्य के सपने सँजोना, अपने व्यक्तित्व को फूल जैसा निर्मल, निर्दोष, आकर्षक एवं सुगन्धित बनाना-ऐसी ही अनेक प्रेरणाएँ वसन्त ऋतु के आगमन पर पेड़-पौधों पर नवीन पल्लवों-पुष्पों को देखकर प्राप्त की जा सकती हैं। कोयल की तरह मस्ती में कूकना, भौरों की तरह गूँजना-गुनगुनाना-यही जीवन की कला जानने वाले के चिह्न हैं। हर जड़-चेतन में, वसन्त ऋतु में एक सृजनात्मक उमंग देखी जाती है। उस उमंग को वासना से ऊँचा उठाकर भावोल्लास में विकसित

किया जाना चाहिए। सरस्वती का अभिनन्दन प्रकृति, वसन्त अवतरण के रूप में करती है। हम पूजा वेदी पर पुष्पांजलि भेंट करने के साथ-साथ जीवन में वसन्त जैसा उल्लास, कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास और ज्ञान सम्वर्धन का प्रयास करके सच्चे अर्थों में भगवती का पूजन कर सकते हैं और उसका लाभ अपने को तथा अन्य असंख्यों को पहुँचा सकते हैं। युग निर्माण योजना का जन्मदिन वसन्त पर्व है, इसकी लगभग सारी महत्वपूर्ण गतिविधियाँ वसन्त पर्व से ही आरम्भ हुई हैं-

(१) योजना के संचालक का आत्मबोध, पर्व एवं दीर्घकालीन तप साधना का आरम्भ (२) गायत्री तपोभूमि का शिलान्यास (३) सहस्र कुण्डीय गायत्री यज्ञ के माध्यम से ४ लाख जीवन्त आत्माओं का मथुरा में सम्मेलन और परिवार का संगठन (४) अखण्ड ज्योति, युग निर्माण पत्रिकाओं का प्रारम्भ (५) आर्ष ग्रन्थों के अनुवाद का प्रारम्भ जैसी प्रायः सभी महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ इसी दिन से प्रारम्भ की जाती रही हैं। इस दृष्टि से इसे एक आन्दोलन अभियान का जन्म दिन भी कह सकते हैं। युग निर्माण परिवार को इसे युग परिवर्तनकारी ज्ञानगंगा का-ज्ञान क्रान्ति का-लाल मशाल का जन्मदिन मानना चाहिए और इस अवसर पर मिशन का स्वरूप अधिकाधिक जनता तक पहुँचाने के लिए-उसका कार्यक्षेत्र बढ़ाने के लिए नैतिक, बौद्धिक एवं सामाजिक क्रान्ति का अनुगामी बनाने के लिए विशेष उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए। शाखाएँ वसन्त पर्व को अपना नवीन वर्ष मानें। पिछले वर्ष के कार्य का लेखा-जोखा लें और अगले कार्य का लक्ष्य निर्धारित करें।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

वसन्त पंचमी पर्व युग निर्माण परिवार के परिजनों के लिए विशेष महत्त्व रखता है। उसकी सनातन महत्ता भी कम नहीं है, फिर भी मिशन के सूत्र संचालक के आध्यात्मिक जन्मदिन के रूप में उसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। पर्व आयोजन का जो विधान यहाँ दिया जा रहा है- वह सार्वभौम उपयोगिता का ही दिया जा रहा है। प्रयास यह किया जाना चाहिए कि अपने प्रभाव क्षेत्र के सभी शिक्षा संस्थानों-पुस्तकालयों आदि में वसन्तपर्व प्रेरणाप्रद ढंग से मनाया जा सके। पर्व संचालन करने वाले यदि पाठ रटा कर भी तैयार

किये जा सकें, तो तमाम स्थानों पर एक साथ ये आयोजन किये जा सकते हैं। वैसे प्रातः, मध्याह्न और सायं, तीन समयों में आयोजन विभक्त करके भी अधिक स्थानों पर क्रमशः आयोजन कर सकते हैं। उसके लिए व्यवस्था में कुशल सहयोगियों को तैयार करना पड़ता है। वे हर स्थान पर पूर्व व्यवस्था सही ढंग से बनाकर रखें।

पूर्व व्यवस्था में अन्य पर्वों की तरह पूजन मंच तथा श्रद्धालुओं के बैठने की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाना चाहिए। मंच पर माता सरस्वती का चित्र, वाद्ययन्त्र सजाकर रखना चाहिए। चित्र में मयूर न हो, तो मयूरपंख रखना पर्याप्त है। पूजन की सामग्री तथा अक्षत, पुष्प, चन्दन, कलावा, प्रसाद आदि उपस्थिति के अनुसार रखें। युग निर्माण मिशन के संचालक का आध्यात्मिक जन्मदिन मनाने के लिए जन्मदिन संस्कार के अनुसार व्यवस्था बना सकते हैं। उनके अभिनन्दन के लिए युगपुरुष वन्दना (प्रज्ञा पुराण के प्रथम खण्ड के अन्त में छपी है) भी संस्कृत अथवा हिन्दी में सधे हुए कण्ठ से संक्षिप्त टिप्पणियों सहित गाई जा सकती है।

॥ पर्व पूजन क्रम ॥

पर्व पूजन के प्रारम्भिक उपचार षट्कर्म से रक्षाविधान तक सभी पर्वों की तरह करते हैं। विशेष पूजन क्रम में माँ सरस्वती का षोडशोपचार पूजन करके उनके उपकरण, वाहन तथा वसन्त पूजन का क्रम चलता है।

युग निर्माण मिशन के संचालक का आध्यात्मिक जन्मदिन मनाना है, तो वसन्त पूजन के बाद उस प्रकरण को जोड़ा जाना चाहिए। संकल्प में नवसृजन संकल्प की संगति दोनों ही समारोहों के साथ ठीक-ठीक बैठती है। नवसृजन के लिए अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं साधनों के अंश लगाने की सुनिश्चित रूपरेखा बनाकर ही संकल्प किया जाना उचित है। समापन क्रम अन्य पर्वों की तरह ही पूरे किये जाते हैं।

॥ सरस्वती आवाहन ॥

माँ सरस्वती शिक्षा, साक्षरता तथा भौतिक ज्ञान की देवी हैं। चूँकि वसन्त पंचमी भी शिक्षा-साक्षरता का पर्व है, इसलिए इस अवसर पर प्रधान रूप से देवी सरस्वती का पूजन किया जाता है। सरस्वती का चित्र अथवा

प्रतिमा स्थापित कर देवी सरस्वती का आवाहन करना चाहिए।

ॐ पावका नः सरस्वती, वाजेभिर्वाजिनीवती।

यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥

- २०.८४

ॐ सरस्वत्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ॥

तदुपरान्त षोडशोपचारपूजन (पृष्ठ ९१) करके प्रार्थना करें-

ॐ मोहान्धकारभरिते हृदये मदीये,

मातः सदैव कुरुवासमुदारभावे।

स्वीयाखिलावयव-निर्मल-सुप्रभाभिः,

शीघ्रं विनाशय मनोगतमंधकारम् ॥

सरस्वती महाभागे, विद्ये कमललोचने।

विद्यारूपे विशालाक्षि, विद्यां देहि नमोऽस्तु ते ॥

वीणाधरे विपुलमंगलदानशीले,

भक्तार्तिनाशिनि विरंचिहरीशवन्द्ये।

कीर्तिप्रदेऽखिल - मनोरथदे महाहं,

विद्याप्रदायिनि सरस्वति नौमि नित्यम् ॥

॥ वाद्ययन्त्र पूजन ॥

वाद्य संगीत मनुष्य की उदात्त भावनाओं और उसकी हृदय तरंगों को व्यक्त करने के सहयोगी साधन हैं। इसलिए इन साधनों का पूजन करना, उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा-भावना प्रकट करना है। स्मरण रहे, स्थूल और जड़ पदार्थ भी चेतनायुक्त तरंगों से स्वर लहरियों के संयोग से सूक्ष्म रूप में एक विशेष प्रकार की चेतना से युक्त हो जाते हैं, इसलिए वाद्य केवल स्थूल वस्तु नहीं, प्रत्युत उनमें मानव हृदय की सी तरंगों को समझकर उनकी पूजा करनी चाहिए। चर्मरहित जो वाद्ययन्त्र उपलब्ध हों, उन्हें एक चौकी पर सजाकर रखें। पुष्प, अक्षत आदि समर्पित कर पूजन करें।

ॐ सरस्वती योन्यां गर्भमन्तरश्चिभ्यां, पत्नी सुकृतं बिभर्ति।

अपांश्चरसेन वरुणो न साम्नेन्द्रंश्च श्रियै जनयन्नप्सु राजा ॥

॥ मयूरपूजन ॥

मयूर-मधुर गान, सौन्दर्य तथा प्रसन्नता का सर्वोत्कृष्ट प्रतीक प्राणी है। मनुष्य मयूर की भाँति अपनी वाणी, व्यवहार तथा जीवन को मधुरतायुक्त आनन्ददायी बनाए, इसके लिए मयूर की पूजा की जाती है।

सरस्वती के चित्र में अंकित अथवा प्रतीक रूप में स्थापित मयूर का पूजन करें। अक्सर चित्रों में मयूर का चित्र होता ही है। यदि कहीं ऐसा चित्र सुलभ न हो, तो मयूर पंख को पूजा के लिए प्रयुक्त कर लेना चाहिए। निम्न मन्त्र से मयूर का पूजन किया जाए-

ॐ मधु वाताऽऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः।

माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥

- १३.२७

॥ वसन्त पूजन ॥

पुष्प प्रसन्नता, उल्लास और नवजीवन के खिलखिलाते रूप के मूर्त प्रतीक होते हैं। प्रकृति की गोद में पुष्पों की महक, उनका हँसना, खेलना, घूमना मनुष्य के लिए उल्लास, प्रफुल्लता का जीवन बिताते के लिए मूक सन्देश है। इसी सन्देश को हृदयंगम करने, जीवन में उतारने के लिए पुष्प का पूजन किया जाता है। खेतों से सर्षप (सरसों) पुष्प जो वसन्ती रंग के हों अथवा बाग आदि से फूल पहले ही मँगवाकर एक गुलदस्ता बना लेना चाहिए। वसन्त का प्रतीक मानकर इसका पूजन करें-

ॐ वसन्ताय कपिञ्जलानालभते, ग्रीष्माय कलविड्कान् वर्षाभ्यस्तित्तिरीञ्छरदे, वर्तिका हेमन्ताय, ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥

- २४.२०

यजमान यही फूल का गुच्छा सरस्वती माता को अर्पित करें।

॥ संकल्प ॥

..... नामाहं वसन्तपर्वणि नवसृजन-ईश्वरीय योजनां अनुसरन् आत्मनिर्माण-परिवारनिर्माण-समाजनिर्माणादिषु त्रिविधसाधनासु नियमनिष्ठापूर्वकं सहयोगप्रदानाय संकल्पं अहं करिष्ये।

* * *

॥ महाशिवरात्रि पर्व ॥

माहात्म्य बोध- महाशिवरात्रि पर्व भगवान् शिव की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए प्रसिद्ध है। शिव का अर्थ होता है-शुभ, भला। शंकर का अर्थ होता है-कल्याण करने वाला। निश्चित रूप से उन्हें प्रसन्न करने के लिए मनुष्य को उनके अनुरूप ही बनना पड़ता है। सूत्र है-“शिवो भूत्वा शिवं यजेत्” अर्थात्-शिव बनकर शिव की पूजा करें, तभी उनकी कृपा प्राप्त हो सकती है। यह भाव गहराई से साधकों को हृदयंगम कराया जा सके तथा शिव की विशेषताओं का सही रूप उनके ध्यान में लाया जा सके, तो वास्तव में साधना के आश्चर्यजनक परिणाम मिलने लगें।

शिवजी के प्रति जनसाधारण में बहुत आकर्षण है; किन्तु उनके सम्बन्ध में भ्रांतियाँ भी खूब हैं, इसलिए शिव की साधना के नाम पर ही अशिव आचरण होते रहते हैं। शिवरात्रि पर्व पर सामूहिक आयोजन के माध्यम से फैली हुई भ्रांतियों का निवारण करते हुए शिव की गरिमा के अनुरूप उनके स्वरूप पर जन आस्थाएँ स्थापित की जा सकती हैं। ऐसा करना व्यक्तिगत पुण्य अर्जन और लोककल्याण दोनों दृष्टियों से बहुत महत्त्व रखता है।

शिव का अर्थ है-शुभ, शंकर का अर्थ है-कल्याण करने वाला। शुभ और कल्याणकारी चिन्तन, चरित्र एवं आकांक्षाएँ बनाना ही शिव आराधना की तैयारी अथवा शिव सान्निध्य का लाभ है। शिवलिंग का अर्थ होता है-शुभ प्रतीक चिह्न-बीज। शिव की स्थापना लिंग रूप में की जाती है, फिर वही क्रमशः विकसित होता हुआ सारे जीवन को आवृत कर लेता है। शिवरात्रि पर साधक व्रत-उपवास करके यही प्रयास करते हैं। शिव अपने लिए कठोर दूसरों के लिए उदार हैं। यह अध्यात्म साधकों के लिए आदर्श सूत्र है। स्वयं न्यूनतम साधनों से काम चलाते हुए, दूसरों को बहुमूल्य उपहार देना, स्वयं न्यूनतम में भी मस्त रहना, शिवत्व का प्रामाणिक सूत्र है।

नशीली वस्तुएँ आदि शिव को चढ़ाने की परिपाटी है। मादक पदार्थ सेवन अकल्याणकारी है; किन्तु उनमें औषधीय गुण भी हैं। शिव को चढ़ाने का अर्थ हुआ-उनके शिव-शुभ उपयोग को ही स्वीकार करना, अशुभ व्यसन रूप का त्याग करना। ऐसी अगणित प्रेरणाएँ शिव विग्रह के साथ जुड़ी हुई

हैं। त्रिनेत्र विवेक से कामदहन, मस्तक पर चन्द्रमा मानसिक संतुलन, गंगा-ज्ञान प्रवाह, भूत आदि पिछड़े वर्गों को स्नेह देना आदि प्रकरण युग निर्माण साहित्य में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं, उनका उपयोग विवेकपूर्वक प्रेरणा प्रवाह पैदा करने में किया जा सकता है।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

शिवरात्रि पर्व के लिए सामूहिक आयोजन में मंच पर शिवजी के चित्र सजाएँ। कामदहन, गंगावतरण, विषपान जैसे चित्रों का उपयोग किया जा सकता है। शिव पंचायतन, जिसमें शिव परिवार तथा गण भी हों, ऐसा चित्र मिल सके, तो और भी अच्छा है। पूजन सामग्री के साथ पूजन के लिए किसी प्रतिनिधि को बिठाया जाए। इस पुस्तक के सामान्य प्रकरण से षट्कर्म, सर्वदेव नमस्कार, स्वस्तिवाचन आदि कृत्य पूरे कर लिये जाएँ। तत्पश्चात् भगवान् शिव, उनके परिवार और गणादि का आवाहन-पूजन किया जाए।

॥ शिव आवाहन ॥

कल्याणकारी धारा के मूल महादेव-महाकाल भगवान् शिव का आवाहन करें। भावना करें कि भक्तों के आवाहन पर वे परम कृपालु युग प्रवर्तक प्रवाह के रूप में प्रकट होंगे, हमारी पूजा स्वीकार करेंगे।

ॐ रुद्रः स ११ सृज्यपृथिवीं, बृहज्ज्योतिः समीधरे।

तेषां भानुरजस्रऽ, इच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ - ११.५४

ॐ याते रुद्र शिवा तनूः, शिवा विश्वाहा भेषजी।

शिवा रुतस्य भेषजी, तया नो मृड जीवसे ॥

ॐ श्री शिवाय नमः ॥

- १६.४९

॥ शिव परिवार आवाहन ॥

शिवजी का परिवार आदर्श परिवार है, सभी अपने-अपने व्यक्तित्व के धनी तथा स्वतन्त्र रूप से उपयोगी हैं। अर्धांगिनी-असुरनिकंदिनी, भवानी, ज्येष्ठ पुत्र देव सेनापति कार्तिकेय तथा कनिष्ठ पुत्र प्रथम पूज्य गणपति हैं। शिव के आराधक को शिव परिवार जैसे श्रेष्ठ संस्कार युक्त परिवार निर्माण

के लिए तत्पर होना चाहिए। भावना करें कि पारिवारिक आदर्श का प्रवाह हमारे बीच प्रवाहित हो रहा है।

॥ भवानी ॥

ॐ हिमाद्रि तनयां देवीं, वरदां शंकरप्रियाम्।

लम्बोदरस्य जननीं, गौरीमावाहयाम्यहम् ॥

॥ स्वामी कार्तिकेय ॥

ॐ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान, ऽ उद्यन्तसमुद्रादुत वा पुरीषात्।

श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू, उपस्तुत्यं महिजातं ते अर्वन् ॥

- २९.१२

॥ गणेश ॥

ॐ लम्बोदर! नमस्तुभ्यं, सततं मोदकप्रिय।

निर्विघ्नं कुरु मे देव, सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

॥ गण आवाहन ॥

शिवजी के गण उनके कार्य के लिए समर्पित व्यक्तित्व हैं। उनमें भूत-पिशाच पिछड़े वर्ग के भी हैं और देव वर्ग के भी। प्रधान गण हैं वीरभद्र। वीरता अभद्र न हो, भद्रता डरपोक न हो, तभी शिवत्व की स्थापना होगी। भले काम के लिए देव-पिशाच सभी एक जुट हो जाएँ, यही प्रेरणा शिवजी के गणों से प्राप्त होती है। भावना करें कि शिवजी के अनुयायी बनने योग्य प्रवृत्तियों का प्रवाह उमड़ रहा है। हमारे द्वारा पूजित होकर वह हमारे लिए उपयोगी बनेंगे।

ॐ भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रारातिः,

सुभग भद्रो अध्वरः। भद्राऽ उत प्रशस्तयः ॥ - १५.३८

तदनन्तर भगवान् शिव, उनके परिवार और गणादि का पुरुषसूक्त से षोडशोपचार पूजन करें। पूजन मंत्र पृष्ठ ९१ में उद्धृत किया जा चुका है। फिर त्रिपत्रयुक्त विल्वपत्र भगवान् शिव को निम्न मन्त्र बोलते हुए चढ़ाएँ।

ॐ त्रिदलं त्रिगुणाकारं, त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम् ।
 त्रिजन्मपापसंहारं, विल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥
 दर्शनं विल्वपत्रस्य, स्पर्शनं पापनाशनम् ।
 अघोरपापसंहारं, विल्वपत्रम् शिवार्पणम् ॥
 तत्पश्चात् सभी लोग हाथ जोड़कर देवाधिदेव की प्रार्थना करें ।

ॐ नागेन्द्र हाराय त्रिलोचनाय,
 भस्मांगरागाय महेश्वराय ।

नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय,
 तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥

मन्दाकिनी- सलिलचन्दन- चर्चिताय,
 नन्दीश्वर- प्रमथनाथ- महेश्वराय ।

मन्दारपुष्पबहुपुष्प- सुपूजिताय,
 तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥

शिवाय गौरी- वदनाब्जवृन्द,
 सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।

श्री नीलकण्ठाय वृषध्वजाय,
 तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥

वशिष्ठ कुम्भोद्भवगौतमार्य-
 मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।

चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय,
 तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥

यज्ञस्वरूपाय जटाधराय,
 पिनाकहस्ताय सनातनाय ।

दिव्याय देवाय दिगम्बराय,
 तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥

॥ अशिव त्याग संकल्प ॥

अशुभ तत्त्वों का भी शुभ योग सम्भव है । कुछ ओषधियों में मादकता और विषैलापन भी होता है, उसे व्यसन न बनने दें । औषधि प्रयोग तक उनकी छूट है । व्यसन बन गये हों, तो उन्हें छोड़ें, शिवजी को चढ़ाएँ । संकल्प करें कि इनका अशिव उपयोग नहीं करेंगे । मंत्र के साथ अशिव पदार्थ छुड़वाए जाएँ, बाद में इन्हें जमीन में गाड़ दिया जाएँ-

ॐ अमंगलानां शमनं, शमनं दुष्कृतस्य च ।

दुःस्वप्ननाशनं धन्यं, प्रपद्येऽहं शिवं शुभम् ॥

तत्पश्चात् अशिव त्याग संकल्प करें-

....नामाहं शिवरात्रिपर्वणि भगवतः शिवप्रीतये तत्सन्निधौ
 अशिव - चिन्तन - आचरण - व्यवहारत्यागानां निष्ठापूर्वकं
 संकल्पमहं करिष्ये । तत्प्रतीकरूपेण....दोषं त्यक्तुं संकल्पयिष्ये ।

संकल्प के अक्षत-पुष्प सभी लोग पुष्पांजलि के रूप में भगवान् को चढ़ाएँ, बाद में दीपयज्ञ, यज्ञादिकृत्य सम्पन्न करके क्रम समाप्त किया जाए ।

* * *

॥ होली ॥

माहात्म्य बोध- होली पर्व सारे भारत में हर्षोल्लास का पर्व है, जिसमें छोटे-बड़े का भेद भुलाकर जनमानस एकाकार होकर तरंगित होने लगता है । यह यज्ञीय पर्व है । नई फसल पकने लगती है, उसके उल्लास में सामूहिक यज्ञ के रूप में होली जलाकर नवीन अन्न का यज्ञ करके, उसके बाद उपयोग में लाने का क्रम बनाया गया है । कृषि प्रधान देश की यज्ञीय संस्कृति के सर्वथा अनुकूल यह परिपाटी बनाई गई है ।

पुराणकालीन, आदर्शसत्याग्रही; भक्त प्रह्लाद के दमन के लिए हिरण्यकश्यप के छल-प्रपंच सफल न हो सके, उसे भस्म करने के प्रयास में होलिका जल मरी और प्रह्लाद तपे कंचन बन गये । खीज-क्रोध से उन्मत्त

हिरण्यकश्यप जब स्वयं उसे मारने दौड़ा, तो नृसिंह भगवान् ने प्रकट होकर उसे समाप्त कर दिया। इस कथा की महान् प्रेरणाओं को होली के यज्ञीय वातावरण में उभारा जाना उपयुक्त है।

यह राष्ट्रीय चेतना के जागरण का पर्व है। जहाँ वर्गभेद है, वहाँ समस्त साधन होते हुए भी क्लेश और अशक्तता ही रहेगी, जिनमें भ्रातृत्व सहकार है, वे अल्प साधनों में भी प्रसन्न और अजेय रहेंगे, इसलिए इसे समता का पर्व भी मानते हैं। कार्य विभाजन के लिए किये गये चार प्रमुख वर्गों को महत्त्व देने की परम्परा रखी गई है। होली पर्व में शूद्र वर्ग को प्रधान महत्त्व देकर समता-सिद्धान्त को चरितार्थ किया जाता रहा है।

इन सब प्रेरणाओं-विशेषताओं को उभारने-पनपाने के लिए होली पर्व का सामूहिक आयोजन अतीव उपयोगी है। प्रभावशाली लोकसेवी-भावनापूर्वक इसके लिए प्रयत्नरत हों, तो बड़े आकर्षक और प्रभावशाली रूप में यह मनाया जा सकता है। होली पर्व पर जो कुरीतियाँ पनप गई हैं, उन्हें निरस्त करने में भी सामूहिक पर्व आयोजन से बड़ी सहायता मिलती है। उत्साह बना रहे, पर उसे मोड़ देकर शुभ बनाया जाए-यह कलाकारिता है, इसे प्रभावशाली लोक-सेवी थोड़े प्रयास-पुरुषार्थ, सूझ-बूझ से सम्पन्न कर सकते हैं। कुछ प्रयोग इस प्रकार किये जा सकते हैं-

होलिका दहन वाले दिन टोली बनाकर निकलें तथा घर-घर से अश्लील चित्र, अश्लील साहित्य माँगें, जो ऐसे चित्र दें, उनके नाम नोट करते चलें। होलिका दहन के समय दोषदहन क्रम में उन सबको होली में जलाएँ। होली पर्व पर चन्दा हो, पूजन में चढ़ोत्तरी हो, उससे अच्छे वाक्य-चित्र खरीदकर उनके यहाँ पहुँचाएँ, जिनने अश्लील चित्र निकाल कर दिये थे। इसके लिए कुछ सद्भावनाशील सम्पन्नों से अलग से भी अनुदान लिया जा सकता है।

होलिका दहन के दूसरे दिन सबेरे लोग धूल-कीचड़ उछालते हैं, इसे सामूहिक सफाई का रूप दिया जा सकता है। गन्दगी की अर्थी निकालने, सामूहिक जुलूस आदि से इस कुप्रथा को मोड़ दिया जा सकता है। ऐसे प्रयोग गाँवों-कस्बों में कुछ साहसी समाजसेवी आसानी से कर सकते हैं। ऐसी स्थिति न दीखे, तो केवल पर्व पूजन से ही संतोष किया जा सकता है।

॥ पूर्व व्यवस्था ॥

होली पर्व मनाने के लिए स्थानीय साधनों- परिस्थितियों के अनुसार पहले से रूपरेखा बना लेनी चाहिए। सामूहिक पर्व पूजन के लिए परम्परागत होलिका दहन के पूर्व सायंकाल का समय उपयुक्त रहता है। सूर्यास्त के बाद किसी निर्धारित देवस्थल पर सभी लोग एकत्रित हों। आने वाले सभी नर-नारियों को यथास्थान पंक्तिबद्ध बैठाने की व्यवस्था रहे। निम्नांकित सामान तथा व्यवस्थाएँ पहले से जुटा लें-

पूजन मंच आकर्षक हो, उस पर नृसिंह भगवान् का चित्र भी हो। सामान्य पूजन सामग्री के साथ समतादेवी के पूजन के लिए चावल की तीन ढेरियाँ पूजा मंच पर पहले से लगाकर रखें। मातृभूमि पूजन के लिए मृत्तिका पिण्ड (मिट्टी का छोटा ढेला) भी रखें। स्वस्तिवाचन, पुष्पांजलि आदि के लिए पर्याप्त मात्रा में पुष्प-अक्षत रहें। नवान्न यज्ञ के लिए गेहूँ की बाल, चने के बूट आदि तैयार रहें, इन्हें भूनकर चीनी की गोलियाँ इलाइची दाने के साथ मिलाकर प्रसाद बाँटा जा सकता है।

॥ क्रम व्यवस्था ॥

पर्व आयोजन स्थल पर सबको यथास्थान बिठाकर संगीत आदि संक्षिप्त उद्बोधन से प्रेरणाप्रद वातावरण बनाकर पर्व-पूजन क्रम प्रारम्भ किया जाए। सामान्य क्रम पूरा करने के बाद भगवान् नृसिंह का आवाहन करके षोडशोपचार पूजन करें। उसके बाद मातृभूमि पूजन-रजधारण तथा समतादेवी का पूजन तथा क्षमावाणी करें।

क्षमावाणी के साथ छोड़े जाने वाले दोष-दुर्गुणों को कागज की पर्चियों पर लिखकर ले लें, इन्हें होली के समय दोषदहन क्रम में होली में झोंक दिया जाए। विशेष पूजन क्रम समाप्त होने पर यदि यज्ञ करने की स्थिति है, तो विधिवत् गायत्री यज्ञ करें। पूर्णाहुति से पहले उसी में नया अन्न भूनें तथा उसकी आहुति दें। यज्ञ की अग्नि सुरक्षित रखें। होलिका दहन यज्ञाग्नि से ही कराएँ। यदि यज्ञ नहीं करना है, तो दीपयज्ञ करके अन्य पर्वों की तरह समापन करें। उस स्थिति में होली जलाने के समय अग्नि स्थापना मन्त्र के साथ अग्नि प्रवेश कराएँ, नवान्न उसी में भूनें तथा उसकी आहुति डालें।

होली में दोषदहन का क्रम चलाएँ। दोष लिखी हुई पर्चियाँ एक साथ होली में जलाएँ। अश्लील चित्र, कलैण्डर आदि एकत्रित किये गए हों, तो वह भी झोंकें, इस क्रम को बड़ा प्रभावशाली बनाया जा सकता है। पूजन क्रम समाप्ति के बाद अथवा होली जलाने पर परस्पर मृत्तिका-भस्म लगाकर प्रणाम करें, गले मिलें।

॥ नृसिंहपूजन ॥

दुष्टजनों के अन्याय और अत्याचार से पीड़ित व्यक्तियों की रक्षा, सेवा तथा उद्धार करने वाला व्यक्ति नृसिंह कहलाता है। हम इन बातों को जीवन में उतारकर अन्याय, अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाएँ, इससे पीड़ित लोगों का उद्धार करें। इसके लिए प्रतीक में नृसिंह पूजन किया जाता है।

हाथ में अक्षत पुष्प लेकर नृसिंह भगवान् का आवाहन मंत्र बोलें। भावना करें कि दुर्बल, साधनहीन, आदर्शवादियों के समर्थक, समर्थ, सम्पन्न, अनाचारियों के काल भगवान् नृसिंह की चेतना यहाँ अवतरित हो रही है। इसके संसर्ग से समाज का कायाकल्प होने की सम्भावना बनेगी।

ॐ नृसिंहाय विद्महे वज्रनखाय धीमहि। तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात् ॥ ॐ श्री नृसिंहभगवते नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

-नृ० गी०

आवाहन के बाद सबके हाथ में अक्षत-पुष्प देकर प्रतिनिधि से पुरुष सूक्त के साथ षोडशोपचार पूजन कराएँ। अन्त में पुष्पांजलि के समय सबके पुष्प एकत्रित करके अर्पित किये जाएँ।

॥ मातृभूमि पूजन ॥

इस धरती की रज मिट्टी हमें उसके उपकारों की याद दिलाती है, जिस पर खेले हैं, बड़े हुए हैं। जिसकी गोद में हमने शिशु की तरह उछल-कूद की है, जिसके पदार्थों से हमारा जीवन बढ़ा-चढ़ा है, ऐसी मातृभूमि स्वदेश के लिए अपनी श्रद्धा, भक्ति, निष्ठा को व्यक्त करने के लिए उसकी रज का पूजन, उसको मस्तक पर धारण करना, उसके प्रति कर्तव्यों का संकल्प लेना आवश्यक होता है। मृत्तिका पूजन करने के लिए एक मिट्टी की वेदी पर

मृत्तिका पिण्ड को पुष्प, रोली, कलावा, चन्दनादि से भली-भाँति सुसज्जित करना चाहिए। तत्पश्चात् निम्न मन्त्र बोलते हुए उसकी पूजा करें।

ॐ मही द्यौः पृथिवी च न, ऽ इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः। ॐ पृथिव्यै नमः। आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि।

-ऋ० १.२२.१३

॥ त्रिधासमतादेवीपूजन ॥

भेद-विभेद को मिटाकर समता को अपनाना मानव समाज के उत्थान, विकास एवं कल्याण के लिए आवश्यक होता है। जो समाज जितना संगठित होगा, वह उतनी ही उन्नति की ओर बढ़ेगा। इसके विपरीत भेद-विभेद में और असमानताओं में बँटा हुआ विशृंखलित समाज नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है, उसे दूसरों के सामने झुकना पड़ता है, पददलित होना पड़ता है। समाज की शक्ति समता में, एकता में और संगठन में ही निहित है।

एक चौकी पर चावलों की तीन ढेरियाँ रखकर उनका निम्नस्थ मन्त्रों से विधिवत् पूजन करना चाहिए। स्मरण रहे एक ढेरी लिंग भेद को मिटाने की प्रतीक है, दूसरी जाति भेद और तीसरी अर्थभेद अर्थात् असमानताओं को दूर करने की प्रतीक है। इस प्रकार इन तीन असमानताओं के प्रतीक के रूप में यह पूजन किया जाता है। भावना करें कि पूजन के साथ विषमता को निरस्त करने वाले समत्व भाव का, सब में संचार हो रहा है।

ॐ अम्बेऽअम्बिकेऽम्बालिके, न मा नयति कश्चन।

ससस्त्यश्चकः सुभद्रिकां, काम्पीलवासिनीम् ॥- २३.१८

पूजन के बाद यदि समय हो, तो यज्ञ करें, अन्यथा दीपयज्ञ करके आगे का क्रम वहीं पूरा कर लें। यदि होली के स्थल पर भीड़ को नियन्त्रित रखते हुए प्रेरणा संचार की स्थिति हो, तो ही वहाँ के लिए अगले क्रम जोड़े अन्यथा पूजा स्थल पर ही सारे उपचार भाव भरे वातावरण में करा लें। होली परम्परागत ढंग से ही जलने दें। स्थिति के अनुरूप ही निर्धारण करें।

॥ क्षमावाणी ॥

स्मरण रहे होली समता का पर्व है। इस अवसर पर छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, गरीब-धनवान् का भेद भुलाकर सबसे अपने अपराधों

की, दुष्कर्मों की क्षमा माँगना, भविष्य में ऐसा न करने का व्रत लेना तथा अपनी भूलों-पर पश्चात्ताप करना समता के भावों को बलवान् और जागरूक बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। सभी लोग अपने-अपने हाथों को अंजलिबद्ध करके निम्न मंत्र बोलते हुए द्वेष-दुर्भाव छोड़ने के रूप में जलांजलि दें। स्मरण रहे आचार्य सभी की अंजलि में थोड़ा जल देकर मन्त्रोच्चार प्रारम्भ कराएँ।

ॐ मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः, सगराः सगरास्थ सगरेण नाम्ना, रौद्रेणानीकेन पात माऽग्नयः। पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो, वोऽस्तु मा मा हि ॐ सिष्ट। - ५.३४

मन्त्रोच्चार के बाद अंजलि का जल सब लोग भूमि पर छोड़ दें और जिनके प्रति भी मन में, जो द्वेष-दुर्भाव हों, उसे त्याग दें।

॥ रज-धारण ॥

मातृभूमि की रज मस्तक पर धारण करके हम उसके प्रति अपना सम्मान ही प्रकट नहीं करते; वरन् अपना जीवन धन्य बनाते हैं। उसे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान देने के लिए मस्तक, कण्ठ, हृदय, भुजाओं में धारण करते हैं, इससे तात्पर्य यह है कि उन अंगों के रहते हुए हम मातृभूमि के प्रति कर्तव्य-उत्तरदायित्व से विलग न हों।

सबके बायें हाथ में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी पहुँचाएँ। मन्त्र के साथ ललाट, बाहु, कण्ठ एवं हृदय आदि में लगाएँ।

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः, इति ललाटे।

ॐ कश्यपस्य त्र्यायुषम्, इति ग्रीवायाम्।

ॐ यद्देवेषु त्र्यायुषम्, इति दक्षिणबाहुमूले।

ॐ तन्नास्तु त्र्यायुषम्, इति हृदि। - ३.६२

॥ नवान्न यज्ञ ॥

भारतीय आदर्शों के अनुसार प्रत्येक शुभ पदार्थ या नई वस्तु भगवान् को समर्पित करके, उनके प्रसादरूप में, यज्ञावशिष्ट रूप में ग्रहण की जाती है। होली के अवसर पर आये नवान्न को भी हम भगवान् का प्रसाद बना

कर ग्रहण करें, इसलिए यज्ञ में नवान्न की आहुतियाँ दी जाती हैं। इसे नवसंस्थेष्टि कहते हैं। नवान्न को निम्न मन्त्र बोलते हुए यज्ञाग्नि में भून लें- ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नो, देहानमीवस्य शुष्मिणः।

प्रप्रदातारं तारिषऽऊर्जं, नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥-११.८३
तत्पश्चात् प्रसाद और जयघोष के बाद क्रम समाप्त किया जाए।

* * *

॥ अन्य पर्वों के प्रारूप ॥

भारत के प्रमुख पर्व-त्यौहारों को प्रेरणाप्रद ढंग से मनाने का विधि-विधान प्रस्तुत किया गया; परन्तु कुछ ऐसे पर्व- त्यौहार और हैं, जो क्षेत्र विशेष एवं वर्ग विशेष में प्रचलित हैं, जैसे क्षेत्र विशेष के पर्व हैं, महाराष्ट्र का गणपति उत्सव, बिहार का सूर्यषष्ठी, दक्षिण का पोंगल आदि और वर्ग विशेष के पर्व हैं- शिल्पकार- इंजीनियर का विश्वकर्मापूजन, सिन्धी समाज का झूलेलाल जयन्ती, अग्रवाल समाज का अग्रसेन महाराज का पूजन- उत्सव आदि। इन पर्व, त्यौहारों को भी मनाने का आग्रह रहता है। इनकी रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की जा रही है। सर्वप्रथम 'पर्वों की सामान्य रूपरेखा' के आधार पर उसकी तैयारी कर ली जाए और प्रधान देवता की प्रतिमा, चित्र आदि जो भी उपलब्ध हो, उसे पूजावेदी पर भली प्रकार से सजा दिया जाए।

कर्मकाण्ड का स्वरूप - सर्वप्रथम जिसका पर्व या जयन्ती मनाई जा रही हो, उसके सम्बन्ध में संक्षिप्त भाव भरी- भूमिका प्रस्तुत की जाए। तदुपरान्त षट्कर्म, तिलक, कलावा, कलशपूजन, स्वस्तिवाचन, सर्वदेव नमस्कार करें। सर्वदेव नमस्कार में जहाँ 'एतत्कर्म प्रधान श्री गायत्री देव्यै नमः' आता है, वहाँ श्री गायत्री देव्यै के स्थान पर अभीष्ट प्रमुख देवता का भी नामोल्लेख किया जाए- यथा- श्री गणपतये, श्री सूर्याय, श्री विश्वकर्माणे आदि। इसके बाद प्रधान देवता तथा उनके सहयोगी सखा और आयुध आदि जिसे आवश्यक समझें, उनका आवाहन निम्नांकित शब्दावली में किया

जाए - ॐ श्री गणतपये नमः । आवाहयामि, स्थापयामि, ध्यायामि ।' यही शब्दावली सभी के लिए रहेगी । गणपतये के स्थान पर विश्वकर्मणे, सूर्याय आदि का प्रयोग किया जा सकता है । आवाहन के बाद संक्षिप्त अथवा पुरुष-सूक्त से षोडशोपचार पूजन किया जाए । इसके बाद यज्ञ या दीपयज्ञ सम्पन्न करें और अन्त में क्षमाप्रार्थना, साष्टांग नमस्कार, देवदक्षिणा संकल्प के साथ मन्त्र पुष्पांजलि समर्पित करते हुए कार्यक्रम पूर्ण किया जाए । जयघोष- प्रसाद वितरण करते हुए, उस देवता विशेष या उत्सव विशेष की महिमा प्रकट करने वाले गीत-भजन प्रस्तुत किए जा सकते हैं ।

॥आशीर्वचन ॥

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
 शत्रुभ्यो भयनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥१॥
 श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात्यवमानं महीयते ।
 धान्यं धनं पशुं बहुपुण्यलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥२॥
 आयुर्द्रोणसुते श्रियो दशरथे शत्रुक्षयो राघवे,
 ऐश्वर्यं नहुषे गतिश्च पवने मानं च दुर्योधने ।
 शौर्यं शांतनवे बलं हलधरे सत्यं च कुन्तीसुते,
 विज्ञानं विदुरे भवन्तु भवतः कीर्तिश्च नारायणे ॥३॥
 लक्ष्मीरुन्धतीचैव कुरुतां स्वस्ति तेऽनघ ।
 असितो देवलश्चैव विश्वामित्रस्तथाङ्गिराः ॥४॥
 स्वस्ति तेऽद्य प्रयच्छन्तु कार्तिकेयश्च षण्मुखः ।
 विवस्वान्भागवान् स्वस्ति करोतु तव सर्वशः ॥५॥
 ब्रह्माणी चैव गायत्री सावित्री श्रीरुमासती ।
 अरुन्धत्यनसूया च तव सन्तु फलप्रदाः ।
 ब्रह्माविष्णुश्च रुद्रश्च सूर्यादिसकलग्रहाः ।
 सौभाग्यं ते प्रयच्छन्तु वेदमन्त्राश्च कल्पकाः ॥७॥

* * *